इकाई 4 जयशंकर प्रसाद के काव्य में राष्ट्रीय चेतना की विशिष्टता और आधुनिक भावबोध

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य
4.1 प्रस्तावना
4.2 प्रसाद काव्य का अध्ययन : दृष्टि और पद्धति
4.3 छायावाद : युग संदर्भ
  4.3.1 राष्ट्रीयता चेतना
  4.3.2 सांस्कृतिक चेतना
  4.3.3 कवि दृष्टि : आधुनिकता का बोध
4.4 जयशंकर प्रसाद का महत्व : आधुनिक कविता का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य
  4.4.1 प्रसाद की राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना : 'कामायनी' के विशेष संदर्भ में
  4.4.2 प्रसाद की अन्य काव्य कृतियों में राष्ट्रीय-सांस्कृतिक चेतना
4.5 आधुनिक बोध और संवेदना : प्रसाद का काव्य
  4.5.1 'कामायनी' : आधुनिक बोध और संवेदना की महत्वपूर्ण फलश्रुति
  4.5.2 अन्य कृतियों में आधुनिक बोध और संवेदना की अभिव्यक्ति
4.6 विशिष्ट चयन के आधार पर प्रसाद का मूल्यांकन
  4.6.1 कामायनी का श्रद्धा सर्ग : सौंदर्य चेतना और विश्व दृष्टि
  4.6.2 'आँसू' में प्रसाद की काव्यानुभूति : प्रेम संवेदना
  4.6.3 'प्रलय की छाया' का विशेष पाठ
4.7 सारांश
4.8 शब्दावली
4.9 प्रश्न

4.0 उद्देश्य

यह इकाई छायावाद के प्रमुख कवि जयशंकर प्रसाद के काव्य पर आधारित है। इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप :

- प्रसाद काव्य की प्रमुख विशेषताएँ जान सकेंगे,
- प्रसाद काव्य में व्यक्त सांस्कृतिक चेतना और राष्ट्रीय जागरण की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे,
- प्रसाद काव्य में व्यक्त आधुनिक भावबोध और युगीन चेतना को समझ सकेंगे,
- प्रसाद की कतिपय रचनाओं के आलोचनात्मक विश्लेषण के द्वारा प्रसाद काव्य का मूल्यांकन कर पाएँगे।
- प्रसाद के काव्य की भाषा, शिल्प एवं काव्य-रूप संबंधी विशेषताओं की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

4.1 प्रस्तावना

इस पाठ्यक्रम में अब तक आप भारतेन्दु युग और द्विवेदी युग से संबंधित कवियों का अध्ययन कर चुके हैं। इस इकाई में अब आप जयशंकर प्रसाद के काव्य का अध्ययन करेंगे। प्रसाद के काव्य पर कोई भी विचार विमर्श तब तक सार्थक नहीं है जब तक कि आपको प्रसाद के समय के बारे में, छायावाद के बारे में, एक रचनाकार के रूप में प्रसाद के बारे में कुछ आधारभूत जानकारी न प्राप्त हो जाए। जहाँ तक प्रसाद के समय और छायावाद का सवाल है इन दोनों के बारे में जानकारी आप पाठ्यक्रम छह से प्राप्त कर सकते हैं। अगर आपने संबंधित इकाइयों का अध्ययन नहीं किया है तो आप अवश्य कर लें। हाँ, जहाँ आवश्यकता होगी इन पहलुओं की चर्चा हम इस इकाई में भी करेंगे।

स्नातकोत्तर स्तर पर जयशंकर प्रसाद जैसे कवि को पढ़ने का अर्थ है कवि को समग्रता में पढ़ना। उनकी काव्यानुभूति, विचारधारा और भावबोध की विशेषताओं के साथ ही छायावाद-युग की विशेषताओं के संदर्भ में प्रसाद के महत्व को समझते हुए पढ़ना। इस अध्ययन की सार्थकता आपके लिए तभी हो

सकती है, जब आपको लगे कि आप सीधे प्रसाद के काव्य-मर्म तक पहुँच रहे हैं। यह अध्ययन तभी सार्थक हो सकता है जब आप प्रसाद को पढ़ते हुए अनुभव करें कि प्रसाद आपके कवि हैं। प्रसाद का पाठ अब आपके लिए अपना पाठ है। प्रसाद छायावाद के कवि हैं इसलिए स्वाभाविक है कि छायावाद की प्रवृत्तियों का परिचय प्रसाद को पढ़ने-समझने में सहायक हो। पर यह अध्ययन अधिक सार्थक तभी होगा जब हम प्रसाद को पढ़ते-पढ़ते कुछ नयी विशेषताओं, सूक्ष्मताओं को जानने-समझने में अपने को सक्षम पा रहे हों। विचार करना चाहिए कि प्रसाद छायावादी कवि के रूप में क्या कुछ नया उद्घाटित कर रहे थे, क्या कुछ नया खोज रहे थे। अधिक संभव यही लगता है कि प्रसाद छायावाद की बहुत-सी विशेषताओं की नींव रख रहे थे। हम आरंभ में ही प्रसाद के कुछ विचार-सूत्रों तथा विशिष्ट काव्यानुभवों की ओर संकेत करेंगे। इन संकेतों से शायद आप प्रसाद की कविता के प्रति गहरी उत्सुकता अनुभव करें।

4.2 प्रसाद काव्य का अध्ययन : दृष्टि और पद्धति

इसमें संदेह नहीं कि प्रसाद का छायावाद-युग में होना महत्वपूर्ण है। पर प्रसाद की निजी साहित्यिक या काव्यात्मक विशेषताओं के साथ उपस्थिति भी उतनी ही महत्वपूर्ण है। हम दोनों ही दृष्टियों से प्रसाद को पढ़ेंगे। पर पद्धति हमारी यह होगी कि हम प्रसाद की कविता के साक्ष्य पर ही उन युगीन विशेषताओं को भी समझने की कोशिश करें, जिन्हें ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखा जाता है।

'प्रेम पथिक' (1910) से 'कामायनी' तक प्रसाद का काव्य विकास हमारी दृष्टि में होना चाहिए। 'कानन कुसुम', 'चित्राधार', 'झरना', 'आँसू', 'लहर' बीच की कृतियाँ हैं। 'झरना' का प्रथम प्रकाशन 1910 में हुआ। इसमें संकलित 'झरना' कविता की निम्नलिखित पंक्तियाँ 'छायावाद' के आरंभिक स्वरूप की संकेतक हैं :

'बात कुछ छिपी हुई है गहरी
मधुर है स्रोत, मधुर है लहरी .....'

इस इकाई में हम प्रसाद की राष्ट्रीय-सांस्कृतिक चेतना और आधुनिक भावबोध को समझने का प्रयास करेंगे। यहाँ हम न भूलें कि छायावादी भाषा और शिल्प की नयी विशेषताएँ आधुनिक भावबोध से संभव हुई हैं और यह आधुनिक भावबोध एक विशेष युग-चेतना से संबद्ध है। छायावाद को नवजागरण की अभिव्यक्ति कहा जाता है। इस नवजागरण के पीछे राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना सक्रिय थी। छायावाद कई बार प्रकृति के नवीन संवेदनात्मक चित्रों के सहारे पहचाना और सराहा गया है। प्रसाद ने भी प्रकृति को विश्वात्मा की छाया या प्रतिबिम्ब कहा था और उसे छायावाद का खास संदर्भ बताया था। पर उन्होंने यह भी कहा था कि सिर्फ प्रकृति-संवेदना के नए स्पर्श वाली कविताएँ छायावाद नहीं हैं। इस दृष्टि से ज़रूरी है कि हम छायावाद-युग की काव्यगत नवीनता को राष्ट्रीय-सांस्कृतिक चेतना और आधुनिक भावबोध की दृष्टि से देखें। यहाँ अध्ययन के लिए यह दृष्टि महत्वपूर्ण होगी। पद्धति यह होगी कि हम प्रसाद की विशेषताओं को उनकी कविताओं के संदर्भ में देखें और सामान्यीकरण से बचें।

4.3 छायावाद : युग-संदर्भ

1916 से 1936 तक बीस वर्षों का समय छायावाद युग है। दो महायुद्धों के बीच की हिंदी कविता के रूप में भी छायावाद का अध्ययन किया जा सकता है। लेकिन छायावाद का मूल उत्स भारतीय स्वाधीनता संघर्ष में है। स्वाधीनता की चेतना का ही परिणाम है -- कल्पना पर अधिक बल। यह तथ्य ध्यान आकृष्ट करने वाला है कि हिंदी कविता में छायावाद और भारतीय राजनीतिक मंच पर महात्मा गांधी का आगमन लगभग एक ही साथ हुआ था। इसी स्थिति ने डॉ0 नगेन्द्र जैसे आलोचक को यह कहने का आधार प्रस्तुत किया होगा कि 'जिन परिस्थितियों ने हमारे दर्शन और कर्म को अंहिसा की ओर प्रेरित किया, उन्होंने ही भाव (सौंदर्य) वृत्ति को छायावाद की ओर।' इसका यह अर्थ नहीं है कि छायावाद और गांधी जी की जीवन दृष्टि समान है या स्वाधीनता संघर्ष में जो भूमिका गांधी की थी, वही छायावाद की हिंदी काव्य के संदर्भ में है। लेकिन स्वाधीनता के संदर्भ में छायावाद और गांधी -- दोनों की परिकल्पना उस दौर में लगभग एक समान कही जा सकती है। स्वाधीन चेतना, सूक्ष्म कल्पना, लाक्षणिकता, नए प्रकार का सादृश्य-विधान, नया सौंदर्यबोध -- इन विशेषताओं को एक साथ प्रसाद की राष्ट्रीय-सांस्कृतिक चेतना और नवीन भावबोध के आधार पर समझने की ज़रूरत होगी। प्रसाद को पढ़ते हुए आपका ध्यान प्रायः इन्हीं विशेषताओं की ओर जाएगा।

4.3.1 राष्ट्रीय चेतना

आरंभ में ही यह स्पष्टीकरण ज़रूरी है कि प्रसाद उस अर्थ में राष्ट्रीयता या राष्ट्रीय चेतना के कवि नहीं है, जिस अर्थ में माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' और सुभद्रा कुमारी चौहान हैं। प्रसाद की राष्ट्रीय चेतना अधिक स्पष्ट रूप में उनके नाटकों में व्यक्त हुई है। प्रसाद की अपनी पहचान के आधार पर छायावाद को 'राष्ट्रीय काव्य' नहीं कहा जाता। यहाँ यह भ्रम नहीं होना चाहिए कि राष्ट्रीय काव्य का महत्व कम है। सचाई यह है कि छायावादी काव्य में राष्ट्रीय जागरण, सांस्कृतिक जागरण के रूप में आता है। इस सांस्कृतिक जागरण की अभिव्यक्ति प्रसाद की 'प्रथम प्रभात', 'अब जागो जीवन के प्रभात', 'बीती विभावरी जाग री' आदि कविताओं में है। इसकी अभिव्यक्ति हम पंत, निराला और महादेवी के यहाँ भी देख सकते हैं। निराला की 'जागो फिर एक बार', पंत की 'प्रथम रश्मि', महादेवी वर्मा की 'जाग तुझको दूर जाना' - जैसी कविताएँ इस दृष्टि से विचारणीय हैं। 'लहर' में संकलित प्रसाद की कविता 'अब जागो जीवन के प्रभात' पर विचार करें तो प्रसाद की राष्ट्रीय चेतना स्वच्छन्दतावाद की मूल चेतना से अभिन्न जान पड़ेगी :

अब जागो जीवन के प्रभात।
वसुधा पर ओस बने बिखरे
हिमकन आँसू जो क्षोभ भरे
ऊषा बटोरती अरूण गात।

छायावाद युग में लिखी कविताओं में नवजागरण के संकेत अधिक महत्वपूर्ण हैं। नवजागरण की इस भावना में एक नए मनुष्य की परिकल्पना दिखाई देती है। प्रसाद यदि छायावाद के मूल में स्वानुभूति की विशिष्टता पर बल देते हैं तो इसके पीछे भी स्वाधीन मनुष्य की कल्पना है। निराला जब कहते हैं - मैंने 'मैं' शैली अपनाई -- तो इसी स्वाधीन चेतना को अभिव्यक्ति देते हैं। अब ऐतिहासिक दृष्टि से हम यह अंतर समझ लें कि भारतेन्दु काल में राष्ट्रीयता की जो भावना अस्पष्ट थी, अमूर्त थी, उसने द्विवेदी युग तक आते-आते स्वच्छन्दतावाद के परिप्रेक्ष्य में एक नए राष्ट्रीय आदर्शवाद का रूप ले लिया और उसी के प्रभाव में छायावाद में एक नयी मानव परिकल्पना सामने आई। इस दृष्टि से राजनीतिक परिदृश्य में तिलक की भूमिका पर विचार करें। जब वे कांग्रेस के सिद्धांतों की व्याख्या करते हुए प्राचीन दार्शनिक मान्यताओं का परीक्षण कर रहे थे और गीता का आधुनिक भाष्य रच रहे थे, तो उसके पीछे यही नवीन राष्ट्रीय चेतना या राष्ट्रीय भावना थी। कर्म सिद्धांत की उनकी व्याख्या 'कामायनी' में व्यक्त ज्ञान, इच्छा और क्रिया के पारस्परिक संबंध से तुलनीय है। 1919 में तिलक का स्थान गांधी ने लिया तो स्वतंत्रता का एक नया संदेश जनता तक पहुँचा। राष्ट्रीय भावना की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति नए रूपों में दिखाई देने लगी। छायावाद-युग के संदर्भ में राष्ट्रीयता या राष्ट्रीय चेतना के सांस्कृतिक पक्ष पर बल देना आवश्यक है। हम आपका ध्यान इस अंतर की ओर ज़रूर आकृष्ट करना चाहेंगे कि यह राष्ट्रीय चेतना सीमित अर्थ में राष्ट्रवाद नहीं है।

4.3.2 सांस्कृतिक चेतना

अभी तक के विश्लेषण पर ध्यान दें तो लगेगा कि हम राष्ट्रीय चेतना को छायावाद में एक सांस्कृतिक चेतना के रूप में ही देख रहे थे। इसीलिए हमने छायावाद को 'शक्तिकाव्य' कहने की सार्थकता स्पष्ट की। छायावाद की भावभूमि को गांधीवाद से जितनी प्रेरणा और स्फूर्ति मिली, उससे कम रवीन्द्रनाथ से नहीं मिली। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल तो मानते ही हैं कि छायावाद बंगाल की भावभूमि का स्पर्श लेकर ही हिंदी में आया। उनकी इस व्याख्या को ध्यान में रखें - 'इस रूपात्मक आभास को योरोप में छाया (Phantasmala) कहते थे। इसी से बंगाल में ब्रह्म समाज के बीच उक्त वाणी के अनुकरण पर जो आध्यात्मिक गीत या भजन बनते थे वे 'छायावाद' कहलाने लगे। धीरे-धीरे यह शब्द धार्मिक क्षेत्र से वहाँ के साहित्यिक क्षेत्र में आया और फिर रवीन्द्र बाबू की धूम मचने पर हिंदी के साहित्य-क्षेत्र में भी प्रकट हुआ।' यह बात शुक्ल जी ने 'हिंदी साहित्य का इतिहास' (पृ0 453) में कही है और इससे उनके छायावाद-संबंधी आरंभिक पूर्वग्रह का भी पता चलता है। बहुत दिनों तक शुक्ल जी छायावादी काव्य को सीमित अर्थ में 'मधुचर्या' कहते रहे। छायावाद की अर्थभूमि उन्हें बहुत सीमित जान पड़ती थी। छायावाद के पीछे राष्ट्रीय-सांस्कृतिक चेतना की प्रेरणा भी काम कर रही थी, यह आरंभ में वे देख न सके थे। निराला की कृति 'तुलसीदास', 'राम की शक्तिपूजा', प्रसाद की 'कामायनी' से परिचित होने के बाद उन्होंने अपनी धारणा बदल ली थी।

यह बात ध्यान में रखें कि रवीन्द्रनाथ ने छायावाद को उस तरह प्रभावित नहीं किया, जैसा कि शुक्ल जी बताते हैं। रवीन्द्रनाथ के सांस्कृतिक चिंतन और कलाविवेक ने छायावाद को प्रभावित किया।

कलाओं का अंतःसंबंध रवीन्द्रनाथ की सांस्कृतिक दृष्टि का आवश्यक पक्ष था। कल्पना किस तरह अनुभव और भाषा के नए साहचर्य विकसित करती है, यह रवीन्द्रनाथ में स्पष्ट था। पंत जैसे कवि इसी अर्थ में रवीन्द्रनाथ का प्रभाव स्वीकार करते हैं। रवीन्द्रनाथ के लिए राष्ट्रीयता विश्वदृष्टि से जुड़कर एक सम्यक सांस्कृतिक चेतना बनती है। इस दृष्टि से प्रसाद भी विश्व मंगल की कल्पना करते देखे जाते हैं। 'कामायनी' में मनु 'विराट' के प्रति ऐसी जिज्ञासा प्रकट करते हैं :

वह विराट् था हमें घोलता
नया रंग भरने को आज
कौन? हुआ यह प्रश्न अचानक
और कुतूहल का था राज

4.3.3 कवि-दृष्टि : आधुनिकता का बोध

प्रसाद का निबंध 'यथार्थवाद और छायावाद' पंत की 'पल्लव' की भूमिका और निराला की 'परिमल' की भूमिका से छायावादी कवियों के आधुनिकता-बोध का स्पष्ट पता लगने के साथ ही बदली हुई कवि-दृष्टि या काव्य-दृष्टि का भी पता लग जाता है। प्रसाद अपने निबंध में कहते हैं, 'छाया भारतीय दृष्टि से अनुभूति और अभिव्यक्ति की भंगिमा पर अधिक निर्भर करती है। ध्वन्यात्मकता, लाक्षणिकता, सौंदर्यमय प्रतीक-विधान तथा उपचार वक्रता के साथ स्वानुभूति की विवृति छायावाद की विशेषताएँ हैं। अपने भीतर से मोती के पानी की तरह आंतर स्पर्श करके भाव समर्पण करने वाली अभिव्यक्ति छाया कांतिमयी होती है।' इस परिभाषा से लगेगा कि सारा बल भाषा की विलक्षणता और नवीनता पर है। पर ध्यान से देखें तो बल आंतरिकता के नए स्पर्श और नए सौंदर्यबोध पर भी है।

'पल्लव' की भूमिका में जहाँ पंत रीतिकाल के प्रभाव में लिखी गयी ब्रजभाषा कविता और उसमें निहित मध्यकालीन संवेदना की हँसी उड़ा रहे थे, वहीं खड़ी बोली की नयी कविता अर्थात छायावादी कविता के आधुनिक बोध और बदली हुई काव्य-दृष्टि को महत्व दे रहे थे। वे लिरिकल बैलेड्स के भूमिका-लेखक वड्र्सवर्थ की तरह पुस्तकों की भाषा की जगह मनुष्यों की भाषा को महत्व दे रहे थे। वे छायावाद में 'नए हाथों का प्रयत्न, जीवित साँसों का स्पन्दन, आधुनिक इच्छाओं के अंकुर, वर्तमान के पदचिह्न, भूत की चेतावनी, भविष्य की आशा, नवीन युग की नवीन दृष्टि' देख रहे थे। वे कह रहे थे 'उसमें नए कटाक्ष, नए रोमांच, नए स्वप्न, नया हास, नया रुदन, नवीन हृत्कम्प, नवीन वसंत, नवीन कोकिलाओं का गान है।' ये संकेत मध्यकालीन सौंदर्यबोध से आधुनिक सौंदर्यबोध की भिन्नता और विशिष्टता को समझने में सहायक हो सकते हैं।

अब देखें, निराला की 'परिमल' की भूमिका - जिसमें कविता की मुक्ति को मनुष्यों की मुक्ति के समकक्ष कहा गया है। निराला व्याख्या करते हैं - मनुष्यों की मुक्ति कर्मों के बंधन से छुटकारा पाना है और कविता की मुक्ति छंदों के शासन से अलग हो जाना। आगे उन्हीं के शब्द हैं - 'मुक्त काव्य कभी साहित्य के लिए अनर्थकारी नहीं होता। प्रत्युत उससे साहित्य में एक प्रकार की स्वाधीन चेतना फैलती है जो साहित्य के कल्याण की ही मूल होती है।'

कहने की आवश्यकता नहीं कि छायावादी कवियों ने नया सौंदर्यबोध विकसित किया, नयी संबंध भावना की खोज की। रीतिकालीन कवियों ने नख-शिख वर्णन की जो रूढ़ियाँ बनायी थीं, उनसे हटकर उन्होंने नयी आधुनिक स्त्री का चित्र सामने रखा। 'कामायनी' में श्रद्धा का रूप चित्रण वायवी ज़रूर है पर एक नयी छवि का संकेत है। पंत की कविता में एक ही पंक्ति में स्त्री को - 'देवी माँ सहचरि प्राण' कहा गया है। जहाँ भूविलास पर ही ध्यान जाता है, कटाक्ष में कुटिलता ही देखी जाती रही है वहाँ छायावादी कवि पंत के लिए — 'करूण भौहों में था आकाश' — सौंदर्य की यह नयी दृष्टि है। स्त्री शिक्षा का प्रसार, स्वाधीनता संघर्ष में स्त्रियों की भागीदारी और ऐसे ही अन्य अनेक कारण रहे होंगे - छायावादी कवियों के आधुनिकताबोध के पीछे। उन्हीं की प्रेरणा से छायावादी कवि दृष्टि में भी बदलाव आया। आप यहाँ बदलाव के कारणों को भी समझने की कोशिश करें और काव्यात्मक परिणाम को भी। अर्थात् यह देखें कि कविता कैसे अपनी बनावट अपनी भंगिमा बदल लेती है।

4.4 जयशंकर प्रसाद का महत्व : आधुनिक कविता का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

अब हम सीधे अपने मुख्य विषय पर आ सकते हैं और आधुनिक कविता के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में प्रसाद के महत्व पर विचार कर सकते हैं।

आधुनिक हिंदी कविता के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में प्रसाद के महत्व को समझने के लिए आरंभिक दो काव्ययुगों की सीमाएँ विचारणीय हैं। भारतेन्दु युग में प्रायः ब्रजभाषा ही काव्य-भाषा रही है। खड़ी बोली में कुछ प्रयत्न हुए भी तो उन्हें स्वीकृति नहीं मिली। वैष्णवभक्ति की अभिव्यक्ति का प्रायः एक रूढ़ मुहावरा बन गया था। राष्ट्रीय आदर्शवाद जिस रूप में भी था, वह था अस्पष्ट और अमूर्त। द्विवेदी युग के काव्य में इतिवृत्तात्मकता और विवरणात्मकता ही प्रमुख हो गयी। वहाँ खड़ी बोली काव्य-भाषा ज़रूर है, पर अटपटी, कई बार ठस और स्थूल कथन पर आश्रित। इसीलिए छायावाद आया तो उसे स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह तक कहा गया। द्विवेदी युग की कविता को स्थूल इतिवृत्तात्मक बताकर शुक्ल जी छायावाद की नयी कल्पना, लाक्षणिकता, चित्रमयता को अलग करते हैं। प्रसाद अपनी काव्य यात्रा के पहले चरण में 'प्रेम पथिक' (1909/ 1910) ब्रज भाषा में लिखते हैं और फिर उसे प्रायः आठ वर्ष बाद खड़ी बोली हिंदी में रूपांतरित करते हैं। इस अवधि में प्रसाद के लिए प्रेम का अर्थ बदल गया है। 'प्रेम पथिक' रूपांतरित होकर इस नयी भाषा तक पहुँचता है :

'इस पथ का उद्देश्य नही है श्रांत भवन में टिक रहना
किंतु पहुँचना उस सीमा पर जिसके आगे राह नहीं।'

'आँसू', 'लहर', 'कामायनी' तक यह भाषा कितनी नयी हो उठी है, देखने की चीज़ है। यहाँ प्रसाद के महत्व को समझने के लिए उनके कवि व्यक्तित्व और उनकी काव्यात्मक संवेदना के कुछ और पहलुओं पर विचार करना अपेक्षित है।

प्रसाद का मूल्यांकन करते हुए आलोचक राम स्वरूप चतुर्वेदी दो संदर्भों को महत्व देते हैं - समरसता और संगीत। (प्रसाद-निराला-अज्ञेय : राम स्वरूप चतुर्वेदी, पृ0 34)। समरसता प्रसाद का जीवन-दर्शन है। क्या समरसता और संगीत पर एक साथ विचार करने का कोई अर्थ है? क्या कारण है कि प्रसाद बहुत से अनुभव संगीत की शब्दावली में व्यक्त करते हैं। प्रसाद के नाटक 'स्कंदगुप्त' की देवसेना समूची सृष्टि की व्याख्या विराट संगीत के रूप में करती है। उसका कहना है - 'प्रत्येक परमाणु के मिलने के इस जागरण गीत में 'विहाग' शब्द पर ध्यान दें :

तु अब तक सोई है आली
आँखों में भरे विहाग-री

(छायावाद की प्रासंगिकता, पृ0 13)

प्रसाद को रहस्यवादी कवि न कहकर आलोचक रमेशचंद्र शाह ने बौद्धिक कवि कहा है, लेकिन हम जानते हैं कि प्रसाद की बौद्धिकता अनुभूति और संवेदना से सम्पृक्त है और एक खास तरह की प्रतीक-व्यवस्था में अभिव्यक्ति पाती है। 'कामायनी' इसका प्रमाण है। प्रसाद गहरे अर्थ में सांस्कृतिक चेतना के कवि हैं -- जातीय सांस्कृतिक इतिहास की सबसे प्रखर चेतना अपने काव्यबोध में लिए हुए। यह उनके महत्व का एक ज़रूरी संदर्भ है। प्रसाद के बाद निराला में ही यह सांस्कृतिक चेतना आपको मिलेगी - वह भी 'तुलसीदास' को छोड़कर खंड-खंड रूप में ही। प्रसाद के यहाँ यह चेतना अधिक गहरी है और उसकी प्रौढ़ परिपक्व अनुभूति उनकी कविता में ही संभव हुई है।

4.4.1 प्रसाद की राष्ट्रीय-सांस्कृतिक चेतना : कामायनी के विशेष संदर्भ में

'कामायनी' एक क्लासिक कालजयी कृति है, जिसकी समकालीन अर्थवत्ता पर आपका ध्यान जाना ही चाहिए। 'कामायनी' छायावाद की अकेली महाकाव्यात्मक सृष्टि है। समरसता के दर्शन के सहारे प्रसाद की जिस ऐतिहासिक चेतना का आभास मिलता है, उससे 'कामायनी' की विचारधारा और प्रसाद की मनोभूमि को ठीक-ठीक समझा जा सकता है। 'कामायनी' के आमुख में प्रसाद के शब्द हैं- 'यदि श्रद्धा और मनु अर्थात मनन के सहयोग से मानवता का विकास एक रूपक है, तो भी बड़ा ही भावमय और श्लाध्य है। यह मनुष्यता का मनोवैज्ञानिक इतिहास बनने में समर्थ हो सकता है।' इसे आधार मानकर प्रायः 'कामायनी' के आलोचक मनोवैज्ञानिक रूपक के रूप में उसकी व्याख्या करते रहे हैं। अतः अंतर्वस्तु और संगठन दोनों दृष्टियों से 'कामायनी' का पुनर्मूल्यांकन ज़रूरी है, जो 'कामायनी' के भावपक्ष, प्रसाद के जीवन दर्शन और 'कामायनी' के निष्कर्षों के आगे प्रश्न चिह्न लगाता हो। मुक्तिबोध की दृष्टि में 'कामायनी' फैंटेसी है। वैदिक कथानक का यहाँ उपयोग एक फैंटेसी की तरह ही किया गया है जिसमें प्रसाद का अपना निजी भावबोध और सामाजिक बोध भी उजागर हुआ है। इस लिए 'कामायनी' आधुनिक जीवन-बोध का महाकाव्य बना है। विचारणीय है कि प्रसाद इस महत्वपूर्ण कृति में फैंटेसी के माध्यम से अपने इच्छित अभिप्रायों को किस प्रकार एकमेक करना चाहते हैं। यह तो स्पष्ट है कि प्रसाद वृत्तियों को मानव-चरित्र के रूप में देखते हैं। इस प्रक्रिया में भी कुछ समस्याएँ पैदा

होती हैं जिनकी चर्चा हम आगे करेंगे।

हम यह मानकर चल रहे हैं कि 'कामायनी' की कथावस्तु आपके ध्यान में है। फिर भी उसकी एक संक्षिप्त रूपरेखा विचारार्थ सामने रख सकते हैं। जलप्रलय की घटना देवसृष्टि के ध्वंस का संकेत है जिसका कारण बना - देवताओं का निर्बाध विलास। अकेले बचते हैं मनु - जिन्हें बस शून्य दिखाई देता है, मृत्यु दिखाई देती है। सब कहीं जल ही जल है। फिर धीरे-धीरे पृथ्वी का आभास मिलने लगता है। लताएँ, वनस्पतियाँ दिखाई देती हैं, जो जीवन की उपस्थिति का संकेत हैं। अतः चिन्ता के बाद मन में आशा जगती है, किसी बचे हुए 'दूसरे' व्यक्ति के लिए -- जो उन्हें अकेलेपन से मुक्त करे। आशा निराशा के इसी द्वंद्व में श्रद्धा प्रकट होती है - रति-काम की पुत्री। विलक्षण नए सौंदर्य के साथ। एक भाववृत्ति का, रागात्मिका वृत्ति का स्त्री-रूप में सजीव प्रतिनिधि बन कर उपस्थित होना। यह श्रद्धा मनु को जीवन में वापस लाती है। इस साहचर्य में श्रद्धा जब मानवकुमार को जन्म देने वाली है, ठीक उसी समय मनु चले जाते हैं। प्रसाद दिखा चुके हैं कि जब श्रद्धा इस स्थिति में आ रही थी, मनु के पूर्व संस्कार उन्हें पशु हिंसापूर्ण यज्ञ की ओर उन्मुख कर रहे थे जो उनकी ईर्ष्या का सूचक है। मनु अपनी भावी संतान के प्रति ईर्ष्या भाव को लेकर सारस्वत प्रदेश पहुँचते हैं। वहाँ बुद्धि का प्रतीक इड़ा इनके सामने हैं, 'बिखरी अलकें ज्यों तर्क जाल।' मनु उसे साथ लेकर प्रशासन तंत्र संभाल लेते हैं। नगर विकासमान है। कृषि, उद्योग, धातुओं के नए-नए हथियार, यंत्र, अहं के वर्चस्व के साथ ही नियमों का अतिक्रमण इस प्रदेश की विशेषता बन गया है। । इड़ा उन्हें मर्यादा में देखना चाहती है। लेकिन मनु इड़ा को भी अपनी अधीनता में रखना चाहते हैं। इससे कुपित होकर प्रजा विद्रोह कर देती है। प्रजा से युद्ध में मनु घायल हैं। श्रद्धा दुःस्वप्न के रूप में इस घटना को पहले ही कल्पित कर लेती है। वह शिशु-कुमार के साथ आती है। मनु पछतावे की आग में झुलस रहे हैं। उन्हें श्रद्धा का कोमल स्पर्श मिलता है। साथ निकलते हैं। फिर एक रात अचानक मनु गायब हो जाते हैं।। इस बीच श्रद्धा-इड़ा संवाद की अत्यंत सार्थक योजना प्रसाद ने की है। श्रद्धा इड़ा की सीमा बताती है -- सिर चढ़ी रही, पाया न हृदय।' पर मानव कुमार को सौंपती है उसे ही। प्रसाद के मन में कहीं है कि भविष्य का मनुष्य एकांगी न हो। और यह भी, कि बुद्धि के बगैर कोई नया मनुष्य अकल्पनीय ही होगा। मनु कहीं गुफा में जा छिपे हैं। देख रहे हैं अखिल विश्व के बीच नटराज का नृत्य, कल्पना में अंतर्लीन होकर। श्रद्धा ही उन्हें इस आध्यात्मिक लक्ष्य तक ले जा सकती है। सुदूर ऊँचाई पर रहस्य ही रहस्य है। इच्छा ज्ञान-क्रिया अलग-अलग ठहरे आलोक बिंदु हैं, जिन्हें श्रद्धा के अनुसार समन्वित करके ही मनुष्यता विजयी हो सकती है। ज्ञान और कर्म की एकता का मर्म भी वही समझाती है। रहस्य से परे एक आनंदभूमि है -- जहाँ इड़ा भी मानव कुमार के साथ पहुँचती है। प्रकृति में सब कुछ समरस है। यही है प्रसाद का आनंदवाद, जो कामायनी का वास्तविक कथा संदर्भ है। पर कवि के मन में कोई विराट कल्पना है, जिससे यह महाकाव्यात्मक विजन संभव हुआ। मुक्तिबोध कहते हैं कि प्रसाद मनु इड़ा श्रद्धा को अपनी दार्शनिक मनोवृत्तियों के अनुकूल चाहे जैसा प्रतीकत्व प्रदान करें, कामायनी की व्याख्या वर्णित मानव चरित्रों के आधार पर ही की जा सकती है। मुक्तिबोध का यह कहना ठीक है कि वेदकालीन मनु कामायनी का मनु नहीं है। प्रसाद का मनु उसी वर्ग का मनु है, जिसके स्वयं प्रसाद जी हैं। (कामायनी एक पुनर्विचार, मुक्तिबोध, पृ0 197) मुक्तिबोध अगर उसमें पूँजीवादी व्यक्तिवाद की प्रकृति देख रहे हैं, जिसने कभी जनतंत्रीकरण का या और किसी तरह के आदर्श का बहाना भी नहीं किया - श्रद्धा और इड़ा को जब चाहा साथ ले लिया तो ठीक ही है। इसमें संदेह नहीं कि श्रद्धा का आदर्शीकरण प्रसाद अंत तक करते हैं - इस हद तक, कि वह काल्पनिक सृष्टि ही लग सकती है। दूसरी ओर वे इड़ा को संपूर्ण स्वतंत्र व्यक्तित्व अर्जित करने से रोकते हैं।

अब जहाँ तक 'कामायनी' में राष्ट्रीय चेतना देखने का सवाल है, उसकी मूल संकल्पना किसी भी संकुचित राष्ट्रवाद के विरूद्ध है। विश्वमंगल ही इसका मूल प्रयोजन है। प्रसाद की स्वाधीन चेतना और विश्वदृष्टि का ही परिणाम है - कामायनी। बीसवीं शताब्दी के दूसरे-तीसरे दशक का राजनीतिक सांस्कृतिक समय 'कामायनी' में कहाँ किस रूप में है, विचारणीय संदर्भ यह है। मुक्तिबोध इसी प्रेरणा से कहते हैं कि प्रसाद का दर्शन एक उदार पूँजीवादी - व्यक्तिवादी दर्शन है जो वर्ग विषमता की निंदा भी करता है और वर्गातीत चेतना के आधार पर समाज के वास्तविक द्वंद्वों पर पर्दा डालना चाहता है या उनका काल्पनिक समाधान सुझाना चाहता है। 'कामायनी' की प्रतीकात्मकता को ध्यान में रखें तो देवसृष्टि विषयक विलास स्मृतियाँ सामंती सभ्यता की समाप्ति की सूचना देने के साथ ही पूँजीवादी युग के आरंभ की भी सूचक है।

यहाँ हम आपका ध्यान मुक्तिबोध की इस विस्तृत व्याख्या की ओर आकृष्ट करेंगे - यह बताने के लिए कि देश काल की समस्याएँ भावात्मक प्रतीकीकरण के आवरण के बावजूद ऐसी तीखी आलोचनात्मक

जिज्ञासा के बीच प्रकट हो जाती हैं। इससे यह भी समझना चाहिए कि एक ही महत्वपूर्ण कृति अपने भीतर इतने आयाम छिपाए रहती है कि आलोचक उसे अलग-अलग पढ़ने में, उसकी अलग-अलग व्याख्या करने में समर्थ होते हैं। मुक्तिबोध का कामायनी संबंधी पाठ (रीडिंग) उनका अपना पाठ है और आज के पाठकों के लिए कहीं ज्यादा विश्वसनीय है। मुक्तिबोध की व्याख्या इस प्रकार है - 'यद्यपि अखिल भारतीय पैमाने पर पूँजीवाद का ही विस्तार हो रहा था, राजनीति, समाजनीति के क्षेत्र में इस प्रक्रिया ने गांधीवादी अर्थतंत्र की प्रवृत्ति को जन्म दिया। मशीनों के विरूद्ध, व्यापक औद्योगीकरण के विरूद्ध, राष्ट्र के केंद्रस्थ शासन तंत्र के विपरीत ग्राम प्रजातंत्र की स्थापना के पक्ष का समर्थन करने वाली विचारधारा एक ऐसी विचारधारा थी, जो भारत की अविकसित आर्थिक अवस्था को कायम रखना चाहती थी, बढ़ते हुए पूंजीवाद के प्रति शंकालु थी, वैचारिक क्षेत्र में उसका विरोध करती थी तथा भारत के पिछड़े हुए स्वरूप को समाप्त करने के बजाए उस स्वरूप में आदर्शवादी रंग मिलाना चाहती थी।' (कामायनी एक पुनर्विचार, पृ0 42-43)

मुक्तिबोध इड़ा को पूँजीवादी सभ्यता की उन्नायिका कहते हैं जिसकी प्रसाद के भाववाद ने उपेक्षा की। फिर भी प्रसाद ने इड़ा का जो व्यक्तित्वविधान किया उसमें नई युगचेतना के सभी सकारात्मक तत्व वर्तमान है :

बिखरी अलकें ज्यों तर्क - जाल।
गुंजरित मधुप - सा मुकुल सदृश
वह आनन जिसमें भरा गान
वक्षस्थल पर एकत्र धरे
संसृति के सब विज्ञान - ज्ञान
था एक हाथ में कर्म - कलश
वसुधा - जीवन रस सार लिए
दूसरा विचारों के नभ को
था मधुर अभय अवलंब दिए (इड़ा सर्ग)

कहने की आवश्यकता नहीं, कि प्रसाद की व्यापक राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना का विश्वमंगल से विरोध न था। श्रद्धा कहती ही है :

विश्व भर सौरभ से भर जाय
सुमन से खेलो सुंदर खेल (श्रद्धा सर्ग)

यह भी सही है कि प्रसाद शोषण उत्पीड़न के विरोध में थे - द्वंद्वों से क्षुब्ध थे - विषमतारहित समाज की स्थापना चाहते थे, भले ही समाधान उनका काल्पनिक हो, आदर्शवादी हो। कहा जा सकता है कि कामायनी की मिथकीय सीमाओं में भी कर्मचेतना, संघर्ष चेतना, एकता जैसे तत्व थे, जिनका महत्व राष्ट्रीय-आंदोलन के लिए था।

4.4.2 प्रसाद की अन्य काव्यकृतियों में राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना

प्रसाद अपनी आरंभिक कृति 'चित्राधार' में यह कहने का साहस कर सके, कि उस ब्रह्म को लेकर मैं क्या करूँगा जो साधारण जन की पीड़ा नहीं हरता। 'ऐसो ब्रह्म लेइ का करिहैं जो नहिं करत, सुनत नहिं जो कछु, जो जन पीर न हरिहैं। 'झरना' में प्रसाद प्रेम की यह स्वच्छन्द अभिव्यक्ति दे सकते थे :

कर गई प्लावित तन मन सारा
एक दिन तव अपाङ.ग की धारा
हृदय से झरना
बह चला, जैसे छा जल ढरना
प्रणय वन्या ने किया पसारा

'आँसू' प्रसाद की महत्वपूर्ण कृति है। पहले संस्करण में 'मुक्तकों' के संकलन-जैसी कृति। आठ वर्ष बाद प्रकाशित दूसरे संस्करण में कथा के अस्पष्ट विधान के रूप में 'प्रबंध गीति'। 'आँसू' में विगत विलास स्मृतियाँ जिस तरह व्यक्त हैं उसी तरह 'कामायनी' के 'चिंता सर्ग' में विगत विलास सुख की स्मृतियाँ हैं। 'आँसू' की अंतिम पंक्तियाँ उसी विश्वमंगल की भावना की अभिव्यक्ति हैं जो 'कामायनी' की कल्पना के मूल में है :

सब निचोड़ लेकर तुम
सुख से सूखे जीवन में
बरसो प्रभात हिमकन - सा
आँसू इस विश्व-सदन में

वियोग की विकलता के साथ आँसू का आरंभ है। वेदना का हाहाकार है, स्मृतियाँ हैं, संयोग के सुख की, प्रिय के मिलन की स्मृतियाँ भी साथ हैं। फिर वही घनीभूत पीड़ा - आँसू में अभिव्यक्ति पाती है।। व्यक्तिगत वेदना कैसे व्यापक कल्याण भावना में बदलने लगती है, यह महत्वपूर्ण है। 'चिरदग्ध दुखी यह वसुधा/ आलोक माँगती, तब भी'। यही अनुभव कवि को विश्व भावना तक ले जाता है।

'लहर' की पहली कविता 'लहर' भी प्रसाद के भावलोक का संकेत देती है, जिसमें प्रेम, करूणा, स्वच्छंद जीवन की आकांक्षा के लिए खास जगह है :

उठ उठ री लघु लोल लहर
करूणा की नव अंगराई - सी
मलयानिल की परछाई - सी
इस सूखे तट पर छिटक छहर

'लहर' में भी 'कामायनी' के 'मेरे क्षितिज उदार बनो' जैसी अभिव्यक्ति है। नवजागरण का संकेत 'बीती विभावरी जाग री' जैसे गीत में भी है जिसे 'अब जागो जीवन के प्रभात' - जैसे गीतों में भी देखा जा सकता है। 'लहर' की लम्बी कविताओं में 'प्रलय की छाया' सबसे महत्वपूर्ण है जिसके राजनीतिक निहितार्थ भी हैं। 'शेर सिंह का शस्त्र समर्पण' तथा 'पेशोला की प्रतिध्वनि' अन्य ऐतिहासिक कविताएँ हैं, जो राष्ट्रीय-सांस्कृतिक जीवन की झलक देती हैं। विचारकों द्वारा कहा गया है कि शेर सिंह का पंचनद और पेशोला का मेवाड़ इतिहास नहीं, बल्कि प्रसाद का जीता जागता वर्तमान है। वर्तमान भी कैसा - पराजय की गहरी पीड़ा के साथ। उसे समझने के लिए 'जीत होती जिसकी, वही है आज हारा हुआ,' तथा 'अरूण करूण बिंब/ वह निर्धूम भस्मरहित ज्वलन पिंड' जैसी पंक्तियों पर ध्यान जाना चाहिए।

हम पहले भी कह चुके हैं कि महत्वपूर्ण कृतियाँ आलोचकों द्वारा हमेशा नयी दृष्टि से पढ़ी जाती हैं, और नयी व्याख्या प्राप्त करती हैं। 'प्रलय की छाया' की राजनीतिक अर्थवत्ता खोजते हुए उसे नामवर सिंह अलग ढंग से पढ़ते हैं। नामवर सिंह के लिए कविता का राजनीतिक अर्थ स्वाधीनता संग्राम के एक विशेष दौर की मनोदशा से संबद्ध है। (नामवर सिंह/ बाद विवाद संवाद/ पृ0 69)। यह बात ध्यान में रखें कि यह कविता 'हंस' के जनवरी 1931 अंक में प्रकाशित हुई थी। 1930 के आसपास का राजनीतिक समय एक तरह की पराजय की मनोदशा की अभिव्यक्ति है। नामवर सिंह व्याख्या के क्रम में संकेत करते हैं कि कमलावती राजशक्ति को नष्ट करने की कोशिश में स्वयं नष्ट हुई। इससे उसकी आत्मप्रवंचना के राजनीतिक निहितार्थों का अनुमान किया जा सकता है।

'लूटा था दृप्त अधिकार ने/ जितना विभव, रूप, शील और गौरव को/ आज वे स्वतंत्र हो बिखरते हैं। एक माया-स्तूप-सा/ हो रहा है लोप इन आँखों के सामने/-देख कमलावती। ढुलक रही है हिम बिंदु-सी/ सत्ता सौंदर्य के चपल आवरण की।'

भारत के स्वाधीनता आंदोलन के असहयोग वाले दौर के परिप्रेक्ष्य में इस कविता का इतिहास-संदर्भ समकालीन और प्रासंगिक जान पड़ता है।

4.5 आधुनिक बोध और संवेदना : प्रसाद का काव्य

प्रसाद आधुनिक बोध और संवेदना के कवि हैं। छायावादी कवियों के आधुनिकता बोध में वैयक्तिक चेतना के साथ नयी सौंदर्य चेतना, नयी प्रेम चेतना, नयी नैतिक चेतना का संश्लिष्ट रूप देखा जा सकता है। डॉ0 देवराज, जिन्होंने कभी 'छायावाद का पतन' नाम की विचारोत्तेजक पुस्तक लिखी थी, मानते हैं कि छायावाद अनाधुनिक पौराणिक-धार्मिक चेतना के विरूद्ध आधुनिक लौकिक चेतना का विद्रोह था। इस मत को आचार्य नंद दुलारे वाजपेयी के इस कथन से संबद्ध करके देखें — 'नयी छायावादी काव्यधारा का भी एक आध्यात्मिक पक्ष है, परंतु उसकी मुख्य प्रेरणा धार्मिक न होकर

मानवीय है।' (आधुनिक हिंदी समीक्षा/ निर्मला जैन : प्रेमशंकर, पृ0 82)। इस प्रकार छायावाद में लौकिक मानवीय संस्पर्श वाली कविता का अनादर नहीं है। यह ज़रूर है कि कई बार छायावादी कवियों के यहाँ लौकिक-मानवीय अनुभव पर अस्पष्टता का पर्दा पड़ा रहा है। जैसा प्रसाद की कृति 'आँसू' में देखा गया, या 'लहर' की कई कविताओं में। इन कृतियों में भी प्रसाद संकेत से बहुत कुछ कह जाते हैं और ऐसी वेदना का चित्र भी उपस्थित कर जाते हैं जो लौकिक मानवीय है। कविता में 'आत्मकथा' लिखने का यह ढंग प्रसाद ने ही अपनाया है :

जिसके अरुण कपोलों की मतवाली सुंदर छाया में
अनुरागिनी उषा लेती थी निज सुहाग मधुमाया मैं
उसकी स्मृति पाथेय बनी है थके पथिक की पंथा की
सीवन को उधेड़ कर देखो क्यों मेरी कंथा की....

यह कविता 'हंस' के प्रसिद्ध आत्मकथा अंक में छपी भी थी। प्रसाद जैसे कवि के आधुनिकताबोध को नयी सौंदर्य चेतना के आधार पर पहचानना होगा। यह सौंदर्य दृष्टि प्रकृति और मनुष्य के बीच नए संबंधों की पहचान में भी प्रकट हुई है। इसी नयी सौंदर्य चेतना के कारण अनुभव के स्तर पर एक नए प्रकार के आंतरिक द्वंद्व का भी पता चलता है। यही दृष्टि वस्तु और कल्पना के नए संबंध की पहचान कराती है। कल्पना के महत्व को परम्परागत अलंकारप्रियता के विरुद्ध विद्रोह के रूप में भी देखा जा सकता है। अनुभव की प्रणाली और अभिव्यक्ति रूपों में जो नवीनता दिखाई देती है, उसे आधुनिक बोध से संबद्ध करके देखने की ज़रूरत है। 'कामायनी' के मनु के भीतर जो उद्विग्नता है वह एक आधुनिक मन की उद्विग्नता जान पड़ती है :

दुख का गहन पाठ पढ़कर अब
सहानुभूति समझते थे
नीरवता की गहराई में
मग्न अकेले रहते थे

आप देखें कि प्रसाद की भाषा में यहाँ एक विशेष प्रकार के नयेपन का आभास है। श्रद्धा मनु को नूतनता के आनंद का रहस्य बताती है। कहा जा सकता है कि दुखवाद और आनंदवाद के द्वंद्वपूर्ण साहचर्य में प्रसाद ने आधुनिक बोध या आधुनिक संवेदना प्राप्त की। प्रसाद ही की पंक्ति 'ले चल वहाँ भुलावा देकर मेरे नाविक धीरे-धीरे' के आधार पर छायावाद को कभी 'पलायनवाद' कहा जाता था। प्रसाद ही प्रमाण है कि छायावाद में जो आधुनिकबोध है उस पर समय का, ऐतिहासिक समय का दबाव भी है।

4.5.1 'कामायनी' : आधुनिक बोध और संवेदना की महत्वपूर्ण फलश्रुति

'कामायनी' के आधुनिक बोध को समझने के लिए ज़रूरी है कि हम विचार या विचारधारा के रूप में हीं उसे न देखें - सीधे कविता में देखें। क्या कारण है कि आज के पाठक को 'चिंता' सर्ग महत्वपूर्ण लगता है जो मनु के अनुभव के रूप में असह्य अकेलेपन का आख्यान है। जलप्रलय की स्थिति में मनु का अकेलापन उन्हें जिन प्रश्नों से टकराने को बाध्य करता है, वे प्रश्न प्रायः आज के मनुष्य को बेचैन करते हैं :

ओ चिंता की पहली रेखा,
अरी विश्व - वन की व्याली
ज्वालामुखी स्फोट के भीषण,
प्रथम कंप - सी मतवाली

इस ग्रह कक्षा की हलचल री
तरल गरल की लघु लहरी
जरा अमर जीवन की, और न
कुछ सुनने वाली बहरी

'श्रद्धा' सर्ग में श्रद्धा का सौंदर्य चित्रण नई सौंदर्य-दृष्टि का संकेत है। रीतिकालीन कवियों के नख-शिख वर्णन से भिन्न इस चित्रण में सौंदर्य का जादू ही आकृष्ट नहीं करता, विश्व मंगल की भावना और उदारता भी आकृष्ट करती है। प्रसाद ने अपने भाववादी समाधान के लिए श्रद्धा का जैसा भी उपयोग

किया हो, उसका व्यक्तित्व विधान आधुनिक संवेदना का ही परिणाम है। यहाँ शब्द चयन पर ध्यान दें :

हृदय की अनुकृति बाह्य उदार
एक लंबी काया उन्मुक्त,
मधु पवन क्रीड़ित ज्यों शिशुसाल
सुशोभित हो सौरभ संयुक्त
नित्य यौवन छवि से ही दीप्त
विश्व की करूण कामना मूर्ति,
स्पर्श के आकर्षण से पूर्ण
प्रकट करती ज्यों जड़ में स्फूर्ति

वह हृदय की अधीर लालसाओं को जगाने वाली है। कर्म में, कर्म के भोग में प्रवृत्त करने वाली है। वह जटिलताओं का सामना करने का साहस दे रही है। दुनिया को सुंदर बनाने की उसकी कल्पना है - उसकी अपनी मूल्य-चिंता। वह विषमता के विरूद्ध है। पुरातनता के विरूद्ध परिवर्तन के पक्ष में है। स्त्री पुरूष साहचर्य-समानता के बारे में सचेत है। स्त्री मुक्ति का यह भावात्मक आदर्श उसकी जीवन शैली है। ललित कलाओं को सीखती-जानती हुई वह मनु तक पहुँची है। संसार की पीड़ा जैसे उसने प्रकृति में ही देख या जान ली है - 'धरा की यह सिकुड़न भयभीत/ आह कैसे है क्या है पीर।' मनु से घनिष्ठ संपर्क के अनुभव ने उसे स्नेह के अंतर्दाह से परिचित कराया है। इड़ा तो आधुनिक युग की बुद्धिचेतना ही है। संकीर्णताएँ आधुनिक समाज में जो समस्याएँ उत्पन्न करती हैं, उनकी ओर स्पष्ट संकेत है। यह है मनु के सामने उपस्थित समाज, जिसके द्वंद्व आज तक सुलझाए नहीं जा सके हैं। क्या विडम्बना है कि बीसवीं शताब्दी के अवसान के समय यह चित्र अत्यधिक प्रश्नाकुलता से भरा जान पड़ता है :

यह अभिनव मानव प्रजा-सृष्टि
द्वयता में लगी निरंतर ही वर्णों की करती रहे वृष्टि
अनजान समस्याएँ गढ़ती रचती हो अपनी ही विनष्टि
कोलाहल-कलह अनंत चले, एकता नष्ट हो, बढ़ें भेद

फिर भी आप अनुभव करेंगे कि प्रसाद के आधुनिक बोध की अपनी सीमाएँ हैं। वे मनु की प्रश्नशीलता को कर्मजीवन में चरितार्थ होते हुए नहीं दिखाते हैं बल्कि उसे वायवीय दार्शनिक समाधान देकर काल्पनिक आनंदवाद की भूमिका में ले जाते हैं। क्या 'कामायनी' में कही जाने वाली मानव-विकास-यात्रा की विसंगति पर उस समय के राजनीतिक यथार्थ की छाया है? मुक्तिबोध याद दिलाते हैं कि सामंती तत्वों ने सामाजिक-राजनीतिक धरातल पर साम्राज्यवाद से अटूट समझौता कर रखा था, फिर भी उच्च कुलोद्भव कुछ सामंती तत्व राष्ट्रवादी आंदोलन में भी आए और कांग्रेस के भीतर उन्होंने नवीन राष्ट्रीय पूँजीवाद से समझौता किया।

फिर भी, 'कामायनी' की आधुनिकता इसी से प्रकट है कि वह 'बड़े जीवन चक्रों' की, जटिल राष्ट्रीय सामाजिक समस्याओं के बीच अभिव्यक्ति का प्रयास है। 'कामायनी' एक अर्थ में सभ्यता-समीक्षा का ही काव्यात्मक प्रयास है। मनु के अंतर्द्वंद्वों को लिए हुए, आंतरिक द्वंद्वों के भावचित्रों को संयोजित करते हुए प्रसाद ने इस कृति को आत्मपरक फैंटेसी की तरह लिखा है। 'कामायनी' जिस अर्थ में सकर्मक जीवन अनुभव और अकर्मक जीवन अनुभव के बीच के तनाव को कलात्मक अभिव्यक्ति देती है, उसके पीछे आधुनिक बोध और संवेदन की स्पष्ट भूमिका है। आप देखें कि आधुनिक जीवन-दृष्टि के रूप में 'कामायनी' के दर्शन की कितनी भी सीमाएँ हों, कवि ने अनुभूतियों के चित्रण की एक नयी कला अर्जित कर ली है। इस विशिष्टता को आप 'श्रद्धा' सर्ग पढ़ते हुए बार-बार देखेंगे, अनुभव करेंगे।

4.5.2 अन्य कृतियों में आधुनिक बोध और संवेदना की अभिव्यक्ति

आप देखेंगे कि 'आँसू' में प्रसाद निजी वेदना को व्यापक रूप देते हुए आंतरिक तनाव को छिपाते नहीं हैं, फिर भी प्रेम के उदात्तीकरण का आदर्श उपस्थित करते हैं - प्रसाद की आधुनिकता इसी तनाव में है। वेदना की आह ही 'आँसू' में सब कुछ होती तो हमें यह रोमांटिक भावना की ही कृति जान पड़ती। यहाँ रोमांटिक भावना है पर उसके साथ लगा लिपटा आधुनिक ढंग का तनाव भी है। प्रसाद के द्वंद्व स्पष्ट हैं, जहाँ व्यक्तिगत वेदना की तीव्रता भी दिखाई देती है और एक तरह की तटस्थता भी दिखाई देती है :

छलना थी तब भी मेरी

उसमें विश्वास घना था
उस माया की छाया में
कुछ सच्चा स्वयं बना था।

'आँसू' के बोध और अभिव्यक्ति में आधुनिकता की पहचान करते हुए एक आलोचक डॉ0 रमेशचंद्र शाह ने उसे 'प्रयोगशीलता' का काव्य कहा है। उनका आशय यह है कि प्रसाद एक तरह की प्रगीतात्मकता और प्रबंधात्मकता में जो नया संबंध बनाते हैं वह एक तरह की प्रयोगशीलता है। पर हमें ऐसे शब्दों के प्रयोग से बचना चाहिए जो विशिष्ट अर्थ में रूढ़ हो चुके हों। हाँ 'आँसू' का आधुनिक बोध या नयापन उसके रूप (या फार्म) में भी है। पर क्योंकि 'प्रयोगशील' तथा 'प्रयोगवाद' उत्तर-छायावाद युग की प्रवृत्ति के साथ जुड़ा है अतः भ्रम पैदा कर सकता है।

'लहर' के प्रगीतों में प्रसाद अधिक स्वच्छन्द दिखाई देते हैं। पर उनका आधुनिक बोध और संवेदन प्रकट होता है 'प्रलय की छाया' जैसी लम्बी कविता में -- जिसमें कमला के माध्यम से एक विलक्षण रूपगर्विता का चित्र हमारे सामने आता है। हम पहले भी इस कविता के राजनीतिक अर्थ का उल्लेख कर चुके हैं। पर मूल द्वंद्व तो कविता का यही है - सत्ता से टकराने की कोशिश में स्वयं ही टूट जाना। द्वंद्व के इस अनुभव में आधुनिक ढंग का तनाव है :

शक्तिशाली होना अहोभाग्य है
और फिर
बाधा-विघ्न आपदा के तीव्र प्रतिघात का
सबल विरोध करने में कैसा सुख है?
इसका भी अनुभव हुआ था भलीभांति मुझे
किंतु वह छलना थी मिथ्या अधिकार की

हम यहाँ केवल संकेत दे रहे हैं कि सरल इकहरे समाधान में आधुनिकता नहीं है। आधुनिकता है द्वंद्व या तनाव में जिसे हम कविता में कई स्तरों पर देख सकते हैं। आपसे अपेक्षा की जाएगी कि आप कविता में आधुनिक ढंग के अनुभवों को देख सकें -- प्रसाद में भी और प्रसाद साहित्य से अलग भी।

4.6 विशिष्ट चयन के आधार पर प्रसाद का मूल्यांकन

यहाँ विशिष्ट पाठ के लिए हमने निम्नलिखित कविताओं का चयन किया है :

1. कामायनी : श्रद्धा सर्ग
2. आँसू
3. प्रलय की छाया

अब हम इन कविताओं पर पाठ-विश्लेषण की दृष्टि से विचार करेंगे। महत्वपूर्ण कविता अपने संगठन या स्थापत्य में भी महत्वपूर्ण होती है और उसके बाहर के संदर्भ से जुड़कर भी। जिस समय लिखी गयी, उस समय की संवेदना के अनुरूप कविता की व्याख्या की जाती है। जिस समय कविता पढ़ी जा रही है, उसे बदले हुए समय की संवेदना के आधार पर भी पढ़ा जा सकता है। यहाँ कविता पाठक के लिए अपना नया अर्थ खोलती है। पाठ-प्रक्रिया में हम प्रसाद जैसे कवि को जब पढ़ते हैं तब युग तथा कवि-व्यक्तित्व की सामान्य विशेषताओं से भी परिचित होते हैं। फिर कविता में कवि की उन विशेषताओं की ओर ध्यान जाता है जो उसकी संरचना या संगठन में प्रमुख रूप से सहायक हुई हैं। इस प्रकार महत्वपूर्ण है कविता का सीधा, सघन, निजी पाठ। हम चाहेंगे कि चयन की कविताओं को आप अपनी व्यक्तिगत आस्वाद-क्षमता के अनुसार सराहते हुए पढ़ें।

4.6.1 कामायनी का श्रद्धा सर्ग : सौंदर्य चेतना और विश्व दृष्टि

जब हम कविता के सीधे पाठ पर बल देते हैं तो किन्हीं दो-एक संदर्भों को संवाद के लिए निर्धारित कर देना शायद बहुत उपयोगी न हो, पर कविता के 'पाठ' की अपनी सीमाएँ भी होती हैं। हम 'श्रद्धा' सर्ग, को समझने के लिए एक वृहत्तर सौंदर्य की ओर संकेत करना चाहते हैं। श्रद्धा सर्ग को पढ़ते हुए सबसे पहले हमारा ध्यान ही जाता है -- सौंदर्य चेतना पर जब श्रद्धा अचानक मनु के जीवन में आ उपस्थित होती है और पूछती है -- कि 'संसार सागर की लहरों द्वारा उछाल फेंकी गयी 'मणि' की तरह तुम

कौन हो, जो इस सूने अंचल की शून्यता को एक नए आलोक से भर दे रहे हो।' तब मनु का ध्यान इस 'रूप' पर जाता है। यही श्रद्धा है - कामगोत्रजा श्रद्धा रति और काम की पुत्री श्रद्धा तथा हृदय की सात्विक वृत्ति का मानवीकृत रूप। भावमयता में वह मूर्त और सजीव है। दीप्ति और सुकुमारता का विलक्षण संयोग है :

और देखा वह सुंदर दृश्य
नयन का इंद्रजाल अभिराम
कुसुम वैभव में लता समान
चंद्रिका से लिपटा घनश्याम

कल्पना से ही यह रूप समझ में आता है। इसलिए सादृश्य विधान की लड़ी यहाँ दर्शनीय है :

या कि नव इंद्र नील लघु शृंग
फोड़ कर धधक रही हो कांत
एक लघु ज्वालामुखी अचेत
माधवी रजनी में अश्रांत

'लघु', 'अचेत' जैसे विशेषणों पर ध्यान दें जो व्यक्तित्व की दीप्ति और ऊष्मा के व्यंजक हैं, पर महत्वपूर्ण है वय के अनुरूप रूप की कोमलता सुकुमारता भी। कल्पना पर इतना बल है कि श्रद्धा 'भावमूर्ति' अधिक लगती है 'मांसल शरीर' कम :

'कुसुम कानन अंचल में मंद
पवन प्रेरित सौरभ साकार
रचित परमाणु पराग शरीर
खड़ा हो ले मधु का आधार।
'.....' और उस पर पड़ती हो शुभ
नवल मधु राका मन की साध।'

एक तो पराग परमाणुओं से रचित व्यक्तित्व की कल्पना और दूसरे वसंत की कल्पना का आधार लेकर, यौवन की नवीनता से संयुक्त व्यक्तित्व यहाँ अत्यंत चित्रमय हो गया है। ऐसी हैं मनु की चिंताएँ और असहायता का अनुभव। अकर्मकता की ग्लानि, पीड़ा, कर्म या काम के प्रति उत्सुक बनाती श्रद्धा, विश्व भावना, विश्वदृष्टि आदि कविता की शब्दावली में यह सब देखने की चीज़ है :

कर रही लीलामय आनंद
महाचिति सजग हुई-सी व्यक्त
विश्व का उन्मीलन अभिराम
इसी में सब होते अनुरक्त
काम मंगल से मंडित श्रेय
सर्ग इच्छा का है परिणाम
चेतना का सुंदर इतिहास
अखिल मानव भावों का सत्य
विश्व के हृदय पटल पर दिव्य
अक्षरों से अंकित हो नित्य

श्रद्धा का यह सौंदर्य केवल सम्मोहन जगाने वाला नहीं है, नयी संस्कृति नये विचार देने वाला भी है।

4.6.2 'आँसू' में प्रसाद की काव्यानुभूति : प्रेम संवेदना

'आँसू' की काव्यानुभूति के केंद्र में है प्रेम संवेदना जो अस्पष्ट दिखने वाली प्रगीत योजना या मुक्तक-शृंखला में एक कथा-लय जो एक प्रेमकथा या विरह कथा का आभास देती है। मिलन की पूर्व-स्मृतियाँ हैं और दुख का नैरन्तर्य। पहली चार पंक्तियाँ ही वेदना के तीव्र विस्फोट की झलक देती हैं :

' इस करूणा कलित हृदय में
अब विकल रागिनी बजती
क्यों हाहाकार स्वरों में
वेदना असीम गरजती।
संयोग की सुखद स्मतियाँ हैं -

'परिरम्भ कुम्भ की मदिरा
निश्वास मलय के झोंके
मुख चंद्र चाँदनी जल से
मैं उठता था मुँह धो के।

"प्रेम की मादकता का तीखा अनुभव-
'विष प्याली जो पी ली थी
वह मदिरा बनी नयन में
सौंदर्य पलक-प्याले का
अब प्रेम बना जीवन में।"

फिर वही छले जाने की पीड़ा, विक्षुब्ध करने वाला अंतर्दाह, और कहने के ढंग में जो नयापन है, उसे लक्ष्य करें :

'मादकता - से आये तुम
संझा से चले गये थे,'

धीरे-धीरे वेदना व्यापक रूप लेती है - तब दिखाई देता है :

नीचे विपुला धरणी है
दुख भार वहन-सी करती
अपने खारे आँसू से
करूणा-सागर को भरती.....

और अंततः हम देखते हैं - प्रेम का उदात्तीकरण :

सबका निचोड़ लेकर तुम
सुख से सूखे जीवन में
बरसो प्रभात हिमकन-सा
आँसू इस विश्व-सदन में

आप देखेंगे कि 'आँसू' में कोई स्पष्ट क्रम नहीं है, इसलिए उसका सतर्क पाठ ज़रूरी है। वर्णन की परम्परागत रूढ़ियाँ भी हैं और नयी कल्पनाओं का साहस भी दिखाई देता है। कवि द्वारा रूप वर्णन के लिए कुछ आरंभिक रूपरेखा अटपटेपन या अधूरेपन में दी गई है। जैसे :

'कुछ रेखाएँ हो ऐसी
जिनमें आकृति हो उलझी
तब तक झलक वह कितनी
मधुमय रचना हो सुलझी-

आप अनुभव करेंगे कि 'रूप' जिस पर कवि का इतना बल है - अपने में 'निसर्ग सुंदरता' अथवा शिशु की उर्मिल निर्मलता लिए हुए है। करूणा में आनंद का अभिप्राय प्रसाद यहाँ देना चाहते हैं। प्रसाद के 'आँसू' का अपना यही पक्ष है। 'आँसू', 'लहर', 'कामायनी' एक ही रचना-समय की कृतियाँ हैं, यह भी ध्यान में रखें।

4.6.3 'प्रलय की छाया' का विशेष पाठ

'प्रलय की छाया' 'लहर' की महत्वपूर्ण रचना है। हम पहले ही इस कविता पर बहुत कुछ कह चुके हैं। इस ऐतिहासिक अनुभव में वर्तमान की पीड़ा किस तरह पहचानी जाएगी, यह अपने ढंग से देखने-जाँचने की चीज़ है। कमला का दर्प इन शब्दों में व्यक्त है :

'मैं भी थी कमला
रूप-रानी गुजरात की
सोचती थी
पद्मिनी जली थी स्वयं किंतु मैं जलाऊंगी
वह दावानल ज्वाला

जिसमें सुलतान जले।'

फिर कुछ और हो जाता है। जलाने की कोशिश में खुद जलने लगती है कमला। यह पछतावे का दंश ही कविता को महत्वपूर्ण बनाता है।

'प्रलय की छाया' में मुक्त छंद का विन्यास, नाटकीयता, चित्रगत जटिलता ध्यान देने की चीज़ें हैं। इसका वाचन करते हुए अनुभव करें पाठ के रूप में इसका सौंदर्य क्या है। इसका अर्थ-मर्म और कवित में त्रासद विडम्बना का क्षण कहाँ है। कविता के रंगमंच पर रूपगर्विता कमला की उपस्थिति इस प्रकार हुई है :

पागल हुई मैं अपनी ही मृदुगंध से -
कस्तूरी मृग जैसी।
पश्चिम जलधि में
मेरी लहरीली नीली अलकावली समान
लहरें उठती थीं मानों चूमने को मुझको
और साँस लेता था संसार मुझे छूकर।

आत्म गर्व और फिर गर्व की व्याप्ति। शब्दों की कोमलता। भाषा का संगीत। ध्यान देने की ज़रूरत है कि रंगमंच के शब्द बिंब कहाँ विशेष अर्थ देने में सक्षम हैं :

'और परिवर्तन वह।
क्षितिज वटी को आंदोलित करती हुई
नीले मेघमाला-सी
नियति-नटी थी आई सहसा गगन में
तड़ित विलास-सी नचाती भौहें अपनी।'

4.7 सारांश

इस इकाई में आपको प्रसाद-काव्य के प्रति उत्सुक बनाते हुए हमने चाहा है कि आप अनुभव करें कि प्रसाद अपनी काव्य चेतना और इतिहास की सांस्कृतिक चेतना के बीच कैसा संबंध प्रमाणित करते हैं। प्रसाद स्वच्छन्द कल्पना का, गहरी स्वानुभूति का कैसा उपयोग करते हैं। सारांश के रूप में इन स्थापनाओं को अपने ध्यान में रखें :

- प्रसाद छायावाद की विशेषताओं का निर्माण करने वाले कवि हैं। उनकी कविता अपना वैशिष्ट्य प्रकट करने के साथ युगीन विशेषताओं को भी उद्घाटित करती है या चरितार्थ करती है।
- प्रसाद की राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना और आधुनिक-बोध को भाषा शिल्प की नवीनता के स्तर पर भी पहचानना चाहिए।
- प्रसाद का कल्पना पर बल देना स्वाधीन चेतना को ही प्रमाणित करना है। यह स्वाधीन चेतना नए सौंदर्य बोध, नयी चित्रमयता, लाक्षणिकता, नए सादृश्य विधान, प्रकृति मनुष्य के नए संबंध, वस्तु और कल्पना के नए संबंध में पहचानी जा सकती है।
- प्रसाद काव्य को राष्ट्रीय काव्य, सांस्कृतिक जागरण का काव्य न कहकर 'शक्ति काव्य' कहा जाता है तो इसकी प्रेरणा प्रसाद के अपने काव्य में ही है।
- प्रसाद की कविता स्वाधीन चेतना के बल पर नयी मानव परिकल्पना में सक्षम है। वह नई संबंध भावना का संकेत है। प्रसाद राष्ट्रीय भावना की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति के कवि हैं।
- प्रसाद की कल्पना इसी दृष्टि से अनुभव भाषा के नए साहचर्य (Association) विकसित करती है।
- छायावाद के कवि (जिसमें प्रसाद अग्रणी है) कविता की नई ही परिकल्पना करते हैं। प्रसाद के लिए कविता आत्मा की संकल्पनात्मक अनुभूति है, पंत के लिए परिपूर्ण क्षणों की वाणी है।
- प्रसाद तथा उनके सहयोगी छायावादी कवियों का बल नई सौंदर्य चेतना पर ही अधिक है।
- प्रसाद गहरे अर्थों में सांस्कृतिक चेतना के कवि हैं।

- प्रसाद समरसता दर्शन को एक भावात्मक आधार देने वाले कवि हैं जिसके लिए उन्हें इतिहास और फैंटेसी में एक नया संबंध विकसित करना पड़ता है। विश्व मंगल भावना 'कामायनी' में ही नहीं, 'आँसू' में भी और 'लहर' के प्रगीतों में भी अभिव्यक्ति प्राप्त करती है। कामायनी की प्रतीकात्मकता महत्वपूर्ण है। 'कामायनी' की मिथकीयता में भी कर्म चेतना, संघर्ष चेतना के लिए जगह है और उस पर दृष्टि जानी चाहिए।
- प्रसाद प्रेम को उदात्त बनाते हैं। 'आँसू' में हम इसे विशेष रूप से देख सकते हैं।
- 'प्रलय की छाया' तथा 'लहर' की अन्य लंबी कविताएँ जहाँ इतिहास चेतना की झलक देती हैं, वहाँ 'प्रलय की छाया' का एक राजनीतिक अर्थ भी है।
- 'कामायनी' में प्रसाद दुखवाद और आनंदवाद के बीच आधुनिक बोध या संवेदना का प्रमाण देते हैं।
- प्रसाद सभ्यता समीक्षा को एक भावात्मक परिप्रेक्ष्य देते हैं। वे सकर्मक जीवन और अकर्मक जीवन के बीच तनाव को भी प्रत्यक्ष करते हैं।
- 'कामायनी' की श्रद्धा भावमूर्ति अधिक है मांसल कम। यह और बात है कि वही मनु को कर्म जीवन में प्रवृत्त करती है।
- प्रसाद-काव्य में नाटकीयता, कथा लय, जटिल चरित्रविधान का अपना महत्व है। प्रसाद के यहाँ संगीत, चित्र, रंगमंच की शब्दावली विशेष अभिप्राय से प्रयुक्त है।

ये कुछ स्थापनाएँ हैं जिनके आलोक में प्रसाद के अपने पाठ का रास्ता आपको स्वयं खोजना है और अपनी आस्वाद-क्षमता का विकास करना है।

4.8 शब्दावली

हम कुछ शब्दों का विशेष संदर्भ में प्रयोग करते रहे हैं। वे कठिन शब्द नहीं हैं पर संदर्भ-विशेष में ही उन्हें समझने का अभ्यास करना है :

प्रतीयमान : अभिधा और लक्षणा जब कवि के अभीष्ट अर्थ को स्पष्ट नहीं कर पाती, तो व्यंजना शक्ति का सहारा लेना पड़ता है। व्यंग्यार्थ के लिए प्रतीयमान अर्थ, ध्वन्यार्थ आदि पदों का प्रयोग किया जाता है।

ध्वन्यात्मकता : के मूल में ध्वनि शब्द है। ध्वनि शब्द व्यंजक शब्द, व्यंजक अर्थ, व्यंजना व्यापार के अर्थों में प्रयुक्त होता है। नाद भी ध्वनि है। कुछ शब्दों के उच्चारण में एक ही प्रकार की ध्वनि सुनाई देती है।

लाक्षणिकता : जब वाचक-रूप शब्द अपने मुख्य अर्थ के बाधित होने पर अन्य अर्थ का प्रतिपादन करने लगता है तो उसे लक्षक या लाक्षणिक शब्द कहते हैं।

समरसता : सामंजस्य। यह अवधारणा प्रसाद ने वैदिक तथा शैव पद्धतियों से ली हैं।

फैंटेसी : मनोविज्ञान का शब्द है। इसका संबंध स्वप्न और अवचेतन मन में घटित होने वाली घटनाओं की विघटित बेतरतीब बिंबावलियों से है।

महाकाव्यात्मक विजन : अंतर्दृष्टि जो महाकाव्यात्मक कल्पना को काव्य में संभव बनाती है।

द्वंद्वपूर्ण साहचर्य : द्वंद्वपूर्ण संबंध।

उदात्तीकरण : 'Sublimation' के अर्थ में प्रयुक्त। उच्चतर भूमि पर ले जाना।

स्थापत्य : संगठन, संरचना, बनावट।

4.9 प्रश्न

1. प्रसाद की सांस्कृतिक चेतना और कवि दृष्टि पर आलोचनात्मक टिप्पणी लिखिए।
2. कामायनी के संदर्भ में प्रसाद की राष्ट्रीय-सांस्कृतिक चेतना का स्वरूप स्पष्ट कीजिए।

3. कामायनी में आधुनिक भाव-बोध की अभिव्यक्ति किन रूपों में हुई है, विवेचना कीजिए।
4. 'श्रद्धा' सर्ग के आधार पर प्रसाद की सौंदर्य चेतना का मूल्यांकन कीजिए।
5. प्रसाद के रूपक और प्रतीक-योजना की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।

इकाई 5 जयशंकर प्रसाद की भाषा और काव्य-शिल्प

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य
5.1 प्रस्तावना
5.2 छायावाद : काव्यभाषा और काव्यशिल्प
  5.2.1 छायावादी काव्य-भाषा के संघटक तत्व
  5.2.2 छायावाद : एक काव्यशैली के रूप में
  5.2.3 छायावादी काव्य में कल्पना
  5.2.4 कल्पना : भाषायी तथा शैलीगत नवीनता
5.3 प्रसाद की काव्य-भाषा
  5.3.1 प्रसाद के काव्य बिंब
  5.3.2 प्रसाद के काव्य प्रतीक
  5.3.3 प्रसाद की भाषा और मिथकीयता
  5.3.4 सादृश्य विधान और प्रसाद की काव्यभाषा की बनावट
5.4 प्रसाद का काव्य-शिल्प
  5.4.1 प्रसाद के काव्यरूप
  5.4.2 छंद और छंद मुक्ति
  5.4.3 छंद, लय और संगीत
  5.4.4 अन्य पक्ष
5.5 'काव्यपाठ' के चयन के आधार पर प्रसाद का मूल्यांकन
  5.5.1 प्रसाद का काव्यशिल्प और 'कामायनी' का श्रद्धा सर्ग
  5.5.2 'आँसू' और प्रसाद की शिल्पगत विशिष्टता
  5.5.3 प्रलय की छाया : रूपबंध : लंबी कविता के रूप में मूल्यांकन.
5.6 सारांश
5.7 शब्दावली
5.8 प्रश्न

5.0 उद्देश्य

यह इकाई जयशंकर प्रसाद की काव्यभाषा और काव्य-शिल्प पर आधारित है। इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप :

- जान सकेंगे कि छायावादी काव्य-भाषा क्या है,
- अपनी पूर्ववर्ती काव्य-भाषा से वह किस रूप में भिन्न है,
- छायावादी काव्यभाषा के संघटक तत्व कौन-कौन से हैं,
- प्रसाद की काव्य-भाषा की बनावट और बुनावट कैसी है,
- तथा कुछ चुनिंदा काव्य कृतियों के आधार पर काव्यभाषा तथा काव्यशिल्प की दृष्टि से प्रसाद का मूल्यांकन कर पाएँगे।

5.1 प्रस्तावना

प्रसाद की काव्यभाषा और काव्यशिल्प पर विचार करने से पूर्व आप के लिए यह जानना ज़रूरी है कि छायावाद की काव्यभाषा और काव्य-रूपों की क्या विशेषताएँ हैं। और इससे पूर्व छायावाद से पहले द्विवेद्वी युग, भारतेंदु युग और मध्यकालीन काव्यभाषा और काव्यरूपों को भी ध्यान में रखना आवश्यक है। इसलिए इस कार्यक्रम के पाठ्यक्रम 6 को आप पहले पढ़ लें, समझ लें। यह तो आप जानते ही हैं कि काव्य-भाषा, काव्य-रूप और अन्तर्वस्तु का द्वंद्वात्मक संबंध होता है। अपने युग, समय का दबाव भी उसे प्रभावित करता है। घात-प्रतिघात की सृजनात्मक प्रक्रिया में ही किसी कवि, युग की काव्यभाषा, काव्यरूप निर्धारित होते हैं ! एक युग की काव्यभाषा, काव्यरूप एक जैसे होते हुए भी एक नहीं होते क्योंकि हर कवि की इन तमाम समानताओं के बावजूद एक निजी पहचान भी होती है ! उसकी रूचि,

अरूचि, विश्वदृष्टि, सृजनात्मक प्रतिभा उसकी रचना को, रचनारूप को एक वैशिष्ट्य प्रदान करती है।

इस इकाई में सर्वप्रथम हम छायावादी काव्यभाषा और काव्यशिल्प पर विचार करेंगे! इसके बाद प्रसाद की कुछ चुनी हुई रचनाओं के आधार पर उनकी काव्यभाषा की विशेषताओं की पड़ताल करेंगे! प्रसाद ने किन-किन काव्य-रूपों का इस्तेमाल किया, छदं के प्रति उनकी क्या दृष्टि रही, और छंद, लय, संगीत उनके काव्य में क्या भूमिका अदा करते हैं, इन सब भी पर भी इस इकाई में हम अलग-अलग विचार करेंगे। अंत में कामायनी के 'श्रद्धा- सर्ग,' 'आँसू' तथा 'प्रलय की छाया' कविताओं के आधार पर प्रसाद की काव्यभाषा तथा काव्यशिल्पगत विशिष्टताओं को भी रेखाक्ति करेंगे।

जैसा हमने पहले कहा था आपके लिए यह अध्ययन तभी सार्थक हो सकता है जब आप प्रसाद की भाषा और काव्यशिल्प की विशिष्टता को सीधे प्रसाद की कविता के पाठ के क्रम में समझने का प्रयास करें। तभी आप बता सकेंगे कि यह है **लाक्षणिकता**, यह है **अनुभूति का खास निजीपन**, यह है **चित्रमयता**। प्रसाद को आप अपने प्रिय कवि की तरह इन विशेषताओं के बीच पढ़ सकें- प्रसाद की कविता का सीधा आस्वाद ग्रहण कर सकें—ऐसे अध्ययन की सार्थकता तभी है।

हमारी दृष्टि में प्रसाद को पढ़ना छायावाद के निर्माणकर्ता कवि के रूप में पढ़ना भी है और प्रसाद की निजी विशेषताओं की पहचान के साथ पढ़ना भी। छायावाद की विशेषताएँ तो प्रसाद, निराला, पंत और महादेवी सबके यहाँ प्रकट हैं, पर इन सभी महत्वपूर्ण कवियों में कुछ ऐसा भी है जो उनका अपना है। सबकी भाषा, अभिव्यक्ति प्रणाली एक-सी नहीं है। इस भेद पर भी आपका ध्यान जाना चाहिए।

छायावाद की प्रसाद की अपनी अवधारणा है। वे छायावाद को भाषागत **रूपगत नवीनता** और **विशिष्टता** के कारण एक तरह की घटना मानते हैं, पर स्वीकार करते हैं कि छायावादी कवियों की **'स्वानुभूति'** में ही कुछ ऐसा नयापन था कि वह परम्परागत शब्दावली या रूपविधान की सीमा में व्यक्त नहीं हो सकता था। हमारी दृष्टि में वे साहित्यिक विवाद भी रहने चाहिएँ, जिनसे एक **काव्य-आन्दोलन** के रूप में छायावाद की महत्ता और क्षमता का आभास मिलता है। यह महत्वपूर्ण है कि आचार्य रामचन्द्र शुक्ल छायावाद के बारे में आरंभ में शंकालु थे और जब वे छायावाद को सबसे पहले मात्र 'काव्यशैली ' बता रहे थे तो छायावाद की अंतर्वस्तु की सीमाओं के बारे में भी आलोचनात्मक प्रतिक्रिया कर रहे थे, उसमें विषय-संकोच को भी रेखांकित कर रहे थे।

इस अध्ययन में हमारी पद्धति यह होगी कि हम प्रसाद के काव्य-विकास के संदर्भ में भी उनकी भाषा-सम्बन्धी तथा रूपशिल्प-सम्बन्धी विशेषताओं को देख सकें, उनका मूल्यांकन कर सकें। प्रसाद ने अपनी काव्ययात्रा ब्रजभाषा से शुरू की। 'झरना' तक उनकी खड़ी बोली काव्य-भाषा में कुछ नयापन दिखाई देने लगा। मुकुटधर पाण्डे ने जब 1920 में जबलपुर की 'श्री शारदा' पत्रिका में 'हिन्दी में छायावाद' शीर्षक लेख-माला प्रकाशित की, तो उन्होंने विशेष रूप से 'झरना' संकलन की 'झरना' कविता का इस प्रकार उल्लेख किया :

> एक दिन तव अपांग की धारा.....
> कर गई प्लावित तन-मन सारा
> मनोहर झरना, कठिन गिरि कहीं विदरित करना

इससे स्पष्ट है कि छायावादी काव्यभाषा और प्रसाद की काव्यभाषा भी क्रमश: विकसित हो रही थी। द्विवेदी युग की इतिवृत्तात्मक कविता-भाषा की प्रतिक्रिया में एक नई काव्यभाषा अचानक विकसित नहीं हो गयी थी। इसके लिए छायावादी कवियों को पर्याप्त श्रम करना पड़ा है। बावजूद इसके छायावादी काव्य-भाषा का विकास धीरे-धीरे प्रौढ़ता की ओर बढ़ा है। इसके लिए हम छायावादी काव्य-भाषा और शिल्प के क्रमिक विकास को भी दिखाने का प्रयास करेंगे।

5.2 छायावाद : काव्यभाषा और काव्यशिल्प

हम आरंभ में ही आपका ध्यान 'मुकुटधर पांडे ' के ऐतिहासिक महत्व के निबंध 'हिन्दी में छायावाद' (1920) की कुछ स्थापनाओं की ओर आकृष्ट करेंगे। इससे पता चलेगा कि जब 'छायावाद' आया आया ही था, और आचार्य 'महावीर प्रसाद द्विवेदी ' जैसे रसज्ञ आलोचक संपादक भी छायावाद को

अर्थहीन बता रहे थे, तब कवि-समीक्षक 'मुकुटधर पांडेय' को **छायावाद** कैसा लगा था। 'मुकुटधर पांडे' की इससे संबद्ध स्थापनाएँ इस प्रकार हैं :

1. छायावाद एक ऐसी मायामय सूक्ष्म वस्तु है कि शब्दों द्वारा उसका ठीक-ठीक वर्णन करना असंभव है। उसका एक मोटा लक्षण यह है कि उसमें शब्द और अर्थ का सामंजस्य बहुत कम रहता है।
2. छायावाद के कवि वस्तुओं को एक असाधारण दृष्टि से देखते हैं..... यह अन्तरंग दृष्टि ही छायावाद की विचित्र प्रकाशन-रीति का मूल है।
3. छायावाद भावराज्य की वस्तु है। उसमें केवल संकेत से ही काम लिया जाता है।
4. यह मोहन-मंत्र वाली निपुणता है क्या ? यह है काव्य में चित्रकारी और संगीत का अपूर्व एकीकरण। (हिन्दी में छायावाद, मुकुटधर पांडेय, पृ037-40)।

अब आप प्रसाद के निबंध "यथार्थवाद और छायावाद" को याद करें जिसकी चर्चा हमने इससे पूर्व की इकाई में की थी। इससे स्पष्ट हो जाएगा कि प्रसाद भी छायावाद की भाषा-शैली की विशिष्टता को बहुत कुछ मुकुटधर पाण्डेय की तरह ही देख रहे थे। "आभ्यंतर सूक्ष्म भावों की प्रेरणा बाह्य स्थूल आकार में भी कुछ विचित्रता उत्पन्न करती है। सूक्ष्म आभ्यंतर भावों के व्यवहार में प्रचलित पदयोजना असफल रही। उसके लिए नवीन शैली नया वाक्यविन्यास आवश्यक था। हिन्दी में नवीन शब्दों की भंगिमा स्पृहणीय आभ्यंतर वर्णन के लिए प्रयुक्त होने लगी। शब्दविन्यास में ऐसा पानी चढ़ा कि उसमें एक तड़प उत्पन्न करके सूक्ष्म अभिव्यक्ति का प्रयास किया गया।" (काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध, पृष्ठ 124) । अपने इस निबन्ध के अन्त में प्रसाद ने स्पष्ट किया था कि ध्वन्यात्मकता, लाक्षणिकता, सौन्दर्यमय प्रतीकविधान तथा उपचास-वक्रता के साथ स्वानुभूति की विवृति छायावाद की विशेषताएँ हैं। अब अच्छा हो कि हम कुछ कविताओं के साक्ष्य पर इन विशेषताओं की जाँच परख करें।

हम आपके समक्ष सन्ध्या-चित्रण के दो उदाहरण रख रहे हैं। आप स्वयं देखें कि द्विवेदी युग की इतिवृत्तात्मक, यथातथ्यात्मक, स्थूल अभिव्यक्ति से किस तरह छायावादी कवि की अभिव्यक्ति भिन्न थी, पहला चित्र हरिऔध के 'प्रियप्रवास' का है :

दिवस का अवसान समीप था
गगन था कुछ लोहित हो चला
तरू शिखा पर थी अवराजती
कमलिनी-कुल-वल्लभ की प्रभा

दिन का अन्त निकट है-जैसी सूचनाएँ दी जा रही हैं। तथ्य कथन जैसा है-कि आकाश लालरंग का हो गया था और डूबते हुऐ सूर्य की कांति पेड़ की ऊपरी फुनगी पर जा टिकी थी। वर्णन अत्यंत सीधा, स्पष्ट और सपाट है। संध्या के इससे भिन्न स्वरूप को प्रस्तुत करने वाली निराला की 'संध्या सुंदरी' कविता की काव्य-भाषा है :

दिवसावसान का समय
मेघमय आसमान से उतर रही है
वह सन्ध्या-सुन्दरी परी-सी
धीरे-धीरे-धीरे

यहाँ स्वर व्यंजन सम्बन्धी अनुप्रास की छटा ही देखने की चीज़ नहीं है बल्कि अभिव्यक्ति में कल्पना के वैचित्रय् द्वारा उत्पन्न नवीन लय और गति से सम्पन्न भाषा का स्वरूप महत्वपूर्ण है। क्योंकि आगे ही पंक्तियां हैं -- 'अलसता की-सी लता/ किन्तु कोमलता की वह कली / सखी नीरवता के कंधे पर डाले बाँह / छाँह-सी अम्बर-पथ से चली।' धीरे-धीरे शाम हो रही है। वातावरण में आलस्य का सौन्दर्य है, अनोखी शांति है। देखें कि छायावादी कवि निराला की कल्पना में सन्ध्या सुंदरी हो गयी, वह भी परी-सी। गति का सौंदर्य। धीरे-धीरे उतरना। फिर नीरवता या शांति है इस सुन्दरी संध्या की सहेली, जिसके कंधे पर हाथ रखकर वह उतरती है।'आलस्य की-सी लता' -- यानी ऐसी लता-सी जिस पर आलस्य छाया हो। यह वह आलस्य है जो, संध्या-सुंदरी का सौन्दर्य कहीं अधिक बढ़ा रहा है, उसे मानवीकृत मादक रूप दे रहा है।

एक अलग तरह का चित्र देखें- 'छाया' का। पंत कैसी अनोखी चित्रात्मक कल्पना करते हैं। सूक्ष्मता अमूर्तता पर यहाँ ध्यान जाना ही चाहिए :

गूढ़ कल्पना-सी कवियों की
अज्ञाता के विस्मय -सी
ऋषियों के गंभीर हृदय-सी
बच्चों के तुतले भय सी

प्रसाद जिसे उपचार वक्रता कहते हैं, वह यही है छाया-बच्चों के तुतले भय के समान। भय तुतला नहीं होता। वर्णन है छाया का। अत: देना है अस्पष्ट रूपाकार -- कल्पना में ही चित्रात्मकता की झलक देते हुए। स्वयं प्रसाद 'कामायनी' में लज्जा का चित्र उपस्थित करते हैं- 'कोमल किसलय के अंचल में/नन्हीं कलियाँ ज्यों छिपती सीं' गोधूली के धूमिल पट में/दीपक के स्वर में दिपती सीं'। ध्यान दें कि 'दीपक' एक राग भी है। तो यह है एक नयी भाषा जिसमें चित्रात्मकता, संगीतात्मकता, सूक्ष्मता, लाक्षणिकता का खास योग है। भीतर की अनुभूति में ही वैचित्र्य है नयापन है, जिसे परम्परागत भाषा शैली में व्यक्त नहीं किया जा सकता।

5.2.1 छायावादी काव्यभाषा के संघटक तत्व

पहले तो, काव्यभाषा है क्या ! शब्द-अर्थ का संगठन। शब्दार्थ सम्बन्ध की विशिष्ट निर्मिति। सामान्य भाषा से भिन्न। सामान्य भाषा जहाँ तथ्यात्मक होगी, प्रयोजन-सापेक्ष होगी वहाँ काव्यभाषा नयी कल्पना या कल्पना के नये उन्मेष से सम्पन्न होगी । काव्यभाषा का उपयोग केवल वस्तु की सूचना देने के लिए नहीं होता-मन में भावचित्र उपस्थित करने के लिए होता है। नये प्रकार का सौन्दर्य नये तरह के सादृश्यविधान में सहायक होता है। सादृश्यविधान, बिम्बविधान, प्रतीकविधान, मिथकीय कल्पना आदि छायावादी काव्यभाषा के संघटक तत्व हैं। यों तो ये किसी भी समय की काव्यभाषा के लिए आदर्श हो सकते हैं- जैसे सादृश्यविधान तो जायसी की कविता का भी ज़रूरी उपादान है। पर छायावाद के लिए 'आभ्यंतर' अनुभव की नयी अभिव्यक्ति के लिए नयी काव्यभाषा ज़रूरी हो उठी है। अलंकार तो छायावादी कवि पंत के लिए भी ज़रूरी हैं। पर पंत के लिए अलंकार क्या है- "भाव की अभिव्यक्ति के विशेष द्वार" । केवल सज्जात्मक अलंकार से छायावादी कवि का काम नहीं चलता। यहाँ ज़रूरी है कि हम अलंकार से बिम्ब और प्रतीक का अन्तर समझकर आगे बढ़ें। अलंकार में प्रस्तुत-अप्रस्तुत का द्वैत किसी न किसी रूप में बना रहता है। जबकि एक सच्चा बिम्ब वहीं होता है जहाँ यह द्वैत समाप्त हो जाय। इससे अधिक महत्वपूर्ण यह है कि बिम्ब और प्रतीक भाषिक प्रक्रिया में प्रस्तुत के स्थानापन्न हो जाते हैं। डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी की शब्दावली में कहें तो एक नये संवेदनशील रूपान्तरण में वे भाषा ही हो जाते हैं। अभी हम अलंकार, बिम्ब, प्रतीक, मिथक की परिभाषा की जटिलताओं की चर्चा नहीं करेंगे। आप यह देखें कि छायावादी कविता की भाषा में इनके प्रयोग से क्या विशेषता पैदा होती है। अतः कुछ और विशेषताओं की ओर आपका ध्यान आकृष्ट करना ज़रूरी है।

छायावादी कवि अक्सर नये शब्द भी देते हैं या शब्दों का क्रम ही ऐसा रख देते हैं कि उनसें नया अर्थ पैदा होने लगता है। रंग, स्वाद, स्पर्श, गंध और ध्वनि के नये ऐन्द्रिक अनुभव से भी छायावादी काव्यभाषा में नयापन प्रकट होता है। 'तुतलाभय' 'नीली झंकार' में रंग-ध्वनि दोनों की संवेदना है। मध्यकालीन काव्यभाषा से छायावादी काव्यभाषा की भिन्नता पर आपका ध्यान जाना चाहिए। कोमलता के आग्रह से जैसे छोटे-छोटे व्यंजक शब्द छायावादी कवियों ने निर्मित किये, वह एक सर्वथा नयी चीज़ थी। निराला 'सरोज स्मृति' कविता में जब कह रहे थे- 'ज्यों मालकोश नव वीणा पर' तो रूप का बिम्ब उपस्थित करने के लिए अर्थात् दृश्य संवेदना के लिए श्रव्य संवेदना का सहारा ले रहे थे। सरोज का सौन्दर्य कैसा ! जैसे नयी वीणा पर बज रहा राग मालकोश ! यह चित्र केवल कल्पना से पाठक या श्रोता के मन में उपस्थित हो सकता है। छंद या लय की नवीनता भी भाषा में नयेपन की संभावना जगाती है।

स्वच्छन्द कल्पना ही छायावादी काव्यभाषा के मूल में है। प्रकृति छायावादी कवियों के लिए एक सजीव सत्ता की तरह है। छायावादी कवियों की कल्पना ने सबसे अधिक भाषात्मक नवीनता प्रकृति-चित्रों में ही संभव की है। श्रद्धा का सौन्दर्य वर्णन और लज्जा का रूपविधान इसका प्रमाण है। पहले की कविता में गिने चुने प्रकृति-बिम्ब आते थे जिनमें वही यमुना तट, वही वंशी वट प्रमुख होते थे। प्रकृति और मनुष्य के नये सम्बन्ध के विवेक से छायावादी कविता में प्रकृति-बिम्बों के असंख्य नये रूप दिखाई देते हैं । 'ज्योत्सना निर्झर', 'लघु परिमल घन-सी चाँदनी', 'विहंगम-सा बैठा गिरि पर विशाल अम्बर' ऐसे

अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं। अन्त में, इस पर भी ध्यान दें कि जिसे 'शैली' कहते हैं उसकी विशिष्ठता का आभास भी कई बार भाषा के ही स्तर पर होता है।

5.2.2 छायावाद : एक काव्य शैली के रूप में

आपके लिए यह जानना बहुत ज़रूरी है कि क्यों आचार्य रामचंद्र शुक्ल छायावाद को मुख्यत: काव्यशैली बता रहे थे! 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में उनकी व्याख्या इस प्रकार है-'छायावाद ' शब्द का प्रयोग दो अर्थों में समझना चाहिए। एक तो रहस्यवाद के अर्थ में, जहाँ उसका सम्बन्ध काव्यवस्तु से होता है अर्थात् जहाँ कवि उस अनंत और अज्ञात प्रियतम को आलम्बन बनाकर अत्यंत चित्रमयी भाषा में प्रेम की अनेक प्रकार से व्यंजना करता है। ....छायावाद शब्द का दूसरा प्रयोग काव्यशैली या पद्धतिविशेष के अर्थ में है। "(हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ0453) द्विवेदी युग की कविता में भाषा की सफाई ज़रूर आयी पर उसका स्वरूप गद्यवत, रूखा, इतिवृत्तात्मक और अधिकतर बाह्यार्थ निरूपक हो गया। छायावाद उसी के विरोध में आया, जिसका प्रधान लक्ष्य काव्यशैली की ओर था, वस्तुविधान की ओर नहीं। यह है शुक्ल जी का छायावाद के बारे में दृष्टिकोण। छायावाद मुख्यत: काव्य-शैली है। उनकी दृष्टि में छायावाद की शैली-रूप में विशेषताएँ हैं -- अभिव्यंजना का लाक्षणिक वैचित्र्य, वस्तुविन्यास की विश्रृंखलता अर्थात् बिखरापन या खंड-खंड चित्रण, चित्रमयी भाषा-मधुमयी कल्पना के अनुरूप कविता का रूपविधान। यहाँ कल्पना का महत्व सबसे अधिक स्वीकार किया जाना चाहिए। यह भावावेग प्रेरित, नयी अन्तर्दृष्टि देने वाली कल्पना ही थी, जिसने छायावाद के रूपविधान में इतना बड़ा परिवर्तन उपस्थित किया कि शुक्ल जी जैसे आलोचक को वह मुख्यत: शैली या काव्यशैली ही प्रतीत हुआ।

शैली की विशेषताएँ भी भाषा के स्तर पर ही प्रकट होती हैं। सादृश्यविधान की नवीनता का छायावादी कवियों ने जैसा इस्तेमाल किया वह मध्यकालीन अलंकारविधान से भिन्न चीज़ है। नये सौन्दर्यबोध ने नयी कल्पना से प्रेरित रचनाविधान को संभव बनाया। छायावाद शैली के नये रूप विधान, नये प्रतीक विधान, नयी व्यंजना के कारण जाना गया। सेनापति जैसे रीतिकालीन कवि से छायावादी पंत के बादल-वर्णन की तुलना करें तो शैली का भेद स्पष्ट हो जायेगा। सेनापति की पंक्ति है-"आने हैं पहाड़ मानों काजर के ढोइ के"। कल्पना थोड़ी नयी अवश्य है पर उपमान की सीमा में बंधी भी है। पंत जी के यहाँ बादल दर्जनों उपमानों का उपमेय है। पंत के बादल जहाँ अनिल के स्रोत में तमाल के पत्तों-से दिखाई देते हैं या गगन की शाखाओं में मकड़ी के जाल की तरह, तो कहीं उनका क्षितिज पर धीरे-धीरे उठना मन में धीरे-धीरे पैदा होने वाला 'संशय' जान पड़ता है। कभी वे अपयश की तरह फैलते हैं और कभी वे मोह की तरह उभरते हैं। शैली की दृष्टि से विशेषता यह है कि वस्तुओं के बीच आकार-साम्य भर न देखकर आंतरिक प्रभाव-साम्य पर बल दिया गया है। जैसे शब्दों का उलट-पुलट जाना, जिसे विशेषण-विपर्यय कहते हैं। यह भी नयी शैली की पहचान है। पहले भी हम 'नीली झंकार', 'तुतला भय' जैसे प्रयोगों पर विचार कर चुके हैं।

छायावादी कविता में प्रतीकों का नया प्रयोग शैलीगत विशिष्टता का सूचक है। कविता के पाठ पर ध्यान जाना चाहिए कि प्रतीकविधान एकदम कैसे कविता में नया प्रभाव पैदा करता है। वह हमारे आस्वाद के अभ्यास को तोड़ता भी है और उसे सघन भी बनाता है। आप पढ़ते हैं :

'उषा का था उर में आवास / मुकुल का मुख में मृदुल विकास / चाँदनी का स्वभाव में वास /(या भास/ दोनों पाठ हैं) विचारों में बच्चों की साँस' तो जान लेते हैं उषा, मुकुल, चाँदनी यहाँ प्रतीक ही हो सकते हैं। ' बच्चों की साँस' भी प्रतीकात्मक प्रयोग है- शिशुता अबोधता आदि के लिए व्यंजक उपमान-पद।'

विराट कल्पना से छायावादियों ने सुदूर वस्तुओं में नज़दीकी रिश्ता दिखाया। वस्तुओं के बीच सम्बन्ध की निकटता या नवीन सम्बन्ध भावना महत्वपूर्ण है। 'आँसू' में स्वप्नमिलन की स्मृतियाँ इसके लिए उदाहरण हैं :

छायानट छवि-परदे में
सम्मोहन-वेणु बजाता
सन्ध्या-कुहुकिनी-अंचल में
कौतुक अपना कर जाता

छायावाद में छंद की नवीनता भी शैली को आकर्षण प्रदान करती है। प्रगीतात्मकता तो प्रमुख प्रवृत्ति है

ही, लोक में रचे-बसे छन्दों का नया आविष्कार भी इन कवियों ने किया है। कजली, आल्हा जैसे छंद भी नया रूप लेकर आते हैं। 'संघर्ष' सर्ग में प्रसाद रोला छंद का प्रयोग करते हैं :

श्रद्धा का था स्वप्न किन्तु वह स्वप्न बना था

स्वच्छन्दता यहाँ नयी लय को जन्म देती है। प्रगीत में तो नयापन है ही, मुक्त छंद का नया प्रयोग भी इन्हीं कवियों की देन है। छायावाद में शैलीगत विशेषताएँ क्यों प्रमुख हो उठी हैं, इसका कुछ संकेत आप पा सके होंगे।

5.2.3 छायावादी काव्य में कल्पना

छायावाद में कल्पना ही नयी सृष्टि का विधान करने वाली है। कल्पना की सबसे अधिक चर्चा आचार्य शुक्ल ने ही की है क्योंकि वे सीधे छायावादी कविता से टकरा रहे थे। धीरे-धीरे उन्होंने इस कल्पना-प्रियता का मर्म समझा। अंग्रेज़ी रोमान्टिक कवियों में कोलरिज कल्पना के महत्वपूर्ण व्याख्याता हैं। कोलरिज ने प्रकृति पर मानवीय भावों के आरोप को ही कल्पना कहा था। यह छायावाद को समझने के लिए एक महत्वपूर्ण सूत्र है। काव्य में वर्ण तथा रूप की योजना कल्पना ही करती है। 'नील परिधान बीच सुकुमार/ खुल रहा मृदुल अधिखिला अंग/ खिला हो ज्यों बिजली का फूल/ मेघ वन बीच गुलाबी रंग।', 'बिजली का फूल' कल्पना से ही संभव है। छायावादी कवियों ने सादृश्यविधान के लिये जहाँ दृष्टिकल्पना या ध्वनिकल्पना का उपयोग किया है वहीं स्पर्शकल्पना या गंध-कल्पना का भी। 'ज्यों मालकोश नव वीणा पर' कल्पना का यह सौंदर्य हम पहले भी बता चुके हैं।

छायावाद में कल्पना सबसे अधिक महत्वपूर्ण है और कल्पना की इस नवीनता का सम्बन्ध एक प्रकार की स्वाधीन चेतना से भी है। स्वछन्द कल्पना पर बल यहाँ अधिक है। रोमेंटिक इमैजिनेशन (स्वच्छंद कल्पना) पर बहुत विचार हुआ है। कहा गया है कल्पना जब अत्यधिक वैयक्तिक स्तर पर, एक भावात्मक विद्रोह के रूप में प्रकट होती है तब वह स्वच्छन्द कल्पना कहलाती है। प्रसाद कहते हैं :

हे कल्पना सुखदान
तुम मनुज जीवनदान

निराला के शब्द हैं :

कल्पना के कानन की रानी
आओ, आओ, मृदु पद, मेरे
मानस की कुसुमित वाणी

पंत के यहाँ :

'कल्पना में है कसकती वेदना'

जैसा पहले कहा गया, सौन्दर्य के नये चित्रण में, विराट की उद्भावना में, स्मृतिविधान के लिए, बिम्बविधान या प्रतीकविधान के लिए कल्पना विशेष महत्वपूर्ण है। छायावादी कविता को समझने के लिए आचार्य शुक्ल का यह भेद ध्यान में रखें -- प्रत्यक्ष रूपविधान करने वाली कल्पना, कल्पित रूपविधान और स्मृतिविधायिनी कल्पना। कभी कल्पना कोई मूर्त-प्रत्यक्ष रूप भी सामने लाती है :

अचल हिमालय का शोभन तम
लता कलित शुचि सानु शरीर

आगे ही वह कल्पित रूपविधान -- जिसे प्रकृति पर मानवीय भावों का आरोप कहेंगे --"निद्रा में सुख-स्वप्न देखता / जैसे पुलकित हुआ अधीर" । 'आँसू' के इस चित्र में स्मृतिविधायिनी कल्पना का रूप है। कवि स्मृति में प्रिया का वह रूप याद करता है जिसकी आँखें तृप्ति का सागर हैं, पुतलियाँ नीलम की नाव, और कज्जल रेखा कालेपानी के किनारे-सी हैं (जहाँ से वापसी का नियम नहीं है) ।

5.2.4 कल्पना : भाषायी तथा शैलीगत नवीनता

इस विश्लेषण से स्पष्ट है कि कल्पना ही नयी भाषा का मुख्य प्रेरक तत्व है। वही शैलीगत नवीनता का भी प्रमुख आधार है। कल्पना केवल चमत्कार - विधान के लिए नहीं, सहज सघन अनुभूति-चित्रण के

लिए भी उपयोगी है। कल्पना नये सौन्दर्य चित्रण की मुख्य प्रेरणा है। बिम्ब का नया संगठन कल्पना द्वारा ही संभव होता है। प्रतीक जहाँ एक अकेले अर्थ की विशिष्टता का द्योतक है, वहाँ बिम्ब एक संश्लिष्ट रूप में ग्राह्य होता है। 'राम की शक्ति पूजा' में जब हताश राम के मन में सीता की स्मृति विद्युत-सी कौंधती है तो एक पूरा संश्लिष्ट बिम्ब 'पुरुष वाटिका मिलन' की स्मृति राम के अनुभव के रूप में उभरने लगता है। यह ऐसी भाषागत नवीनता है या शैली का ऐसा नया ढंग है कि पाठक का ध्यान अलग-अलग अलंकार, बिम्ब और प्रतीक पर नहीं जाता। लगता है कि अलंकार, बिम्ब, प्रतीक एक दूसरे में घुलमिल गये हैं। आगे भी हम देखेंगे कि प्रसाद जैसे छायावादी कवि का ध्यान सज्जात्मक या अलंकरणप्रधान बिम्ब की ओर नहीं जाता। वह अधिकतर संवेदनात्मक बिम्बों की ओर ही जाता है।

5.3 प्रसाद की काव्यभाषा

ब्रजभाषा से खड़ी बोली तक और इतिवृत्तात्मक अनगढ़ खड़ी बोली से रचनात्मक संवेदना सम्पन्न, रागसमृद्ध, लाक्षणिक, चित्रमय, ध्वनिमय काव्य-भाषा तक प्रसाद का विकास आप क्रमशः देख और समझ रहे होंगे। प्रसाद की काव्यभाषा में नयी अलंकृति को नये सादृश्य-साधर्म्य सम्बन्ध को, उसमें निहित नयी चमक को समझने की दृष्टि से आपको प्रसाद की कविता के पाठ का अपना ढ़ंग विकसित करना चाहिए। हम कुछ सूत्र भर दे रहे हैं कि आप प्रसाद की काव्यभाषा को संगठित करने वाले उपादानों – बिम्ब, प्रतीक, मिथक, सादृश्यविधान – को समझ सकें और उनके आधार पर प्रसाद की काव्यभाषा के समग्र आकर्षण को, संश्लिष्ट आकर्षण को भी हृदयंगम कर सकें। प्रसाद की काव्यभाषा की समझ में शब्द का उनका अपना चुनाव सबसे अधिक सहायक है। प्रसाद के काव्यशब्दों के पीछे बंगला-संस्कार की ओर ध्यान जाना चाहिए। प्रसाद का आकर्षण कोमल लयात्मक पदविन्यास में बराबर बना रहा। प्रसाद की मधुमयी प्रवृत्ति ऐसे शब्दों के प्रयोग में अधिक रूचि लेती है। प्रसाद की निम्नलिखित काव्य पंक्तियों में इन्दीवर, मधु की धारा, माधवी निशा जैसे प्रयोगों को देखें :

इस इन्दीवर से गन्ध भरी
बुनती जाली मधु की धारा
माधवी निशा की अलसाई
अलकों में लुकते तारा-सी

प्रसाद की कल्पना व्यंजक-चित्रों की अभिव्यक्ति में दूर तक सहायक है। यह भाषा प्रगीतात्मकता के अनुकूल तो है ही, शुक्ल जी ने स्वीकार किया है कि प्रसाद जी प्रबंध क्षेत्र में भी छायावाद की चित्रविधान और लाक्षणिक शैली की सफलता की आशा बंधा गये हैं (हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 470) ।

उल्लेखनीय है कि प्रसाद ने पुराने शब्दों को नया अर्थ, नया संस्कार दिया। अप्रचलित शब्दों में नयी चमक पैदा की। साथ ही अपने भावावेग प्रेरित लाक्षणिक शब्दों को नयी भंगिमा दी। यह अर्थपूर्ण अछूता बिम्ब देखें – चित्र है जलप्लावन के बाद अकेले बचे मनु का :

एक विस्मृति का स्तूप अचेत
ज्योति का धुँधला-सा प्रतिबिम्ब

प्रसाद के शब्द प्रयोगों की प्रकृति विचारणीय है। क्यों उन्हें 'शीतल दाह,' 'शिथिल सुरभि, 'स्मितिमय चाँदनी' जैसे प्रयोग अधिक अर्थवान लगते हैं ! रजनी उनके यहाँ एक ओर 'इन्द्रजाल रजनी' है तो दूसरी ओर वही "विश्व कमल की मृदुल मधुकरी" है। प्रसाद का स्वभाव ऐसे प्रयोगों के पीछे पहचाना जा सकता है। विशेष प्रकार की आन्तरिक अनुभूति ही प्रसाद की काव्यभाषा के नयेपन के मूल में है।

5.3.1 प्रसाद के काव्य-बिम्ब

आप सहज ही देख सकेंगे कि प्रसाद के काव्यबिम्बों के पीछे ऐन्द्रिक अनुभवों की चेतना है। यह सौन्दर्यबिम्ब स्पष्ट रूप से वर्ण-बिम्ब है :

और उस मुख पर वह मुस्कान !
रक्त किसलय पर ले विश्राम
अरुण की एक किरण अम्लान

अधिक अलसाई हो अभिराम !

प्रसाद यहाँ अधरों की लाली में घुली हुई मुसकान की हल्की लाली को एक दूसरे से अलगाते हुए इस सूक्ष्म सौन्दर्य बिम्ब की कल्पना कर सके हैं। देखें कि "अलसाई" विशेषण से 'किरण' शब्द में एक अद्‌भुत मूर्तिमत्ता आ गयी है। केदारनाथ सिंह ने संकेत किया है कि प्रसाद विरोधी वर्ण योजना से अनुभूति के नये बिम्ब रचते हैं। (आधुनिक हिन्दी कविता में बिम्बविधान, पृष्ठ 205) जैसे :

एक लघु ज्वालामुखी अचेत
माधवी रजनी में अश्रान्त

'ज्वालामुखी' और 'माधवी रजनी' का विरोध प्रकट है। पर देखें कि प्रसाद 'ज्वालामुखी' की दाहकता को कम करने के लिए उसे दो विशेषणों से घेरते हैं। 'लघु' और 'अचेत' । यह प्रसाद की अपनी कला है।

स्वाद बोध का एक बिम्ब लाक्षणिकता की दृष्टि से विचारणीय है :

पवन पी रहा था शब्दों को
निर्जनता की उखड़ी साँस

ध्वनि संवेदना और स्वाद संवेदना का यह मिश्रण ध्यान देने योग्य है। स्पर्श का बिम्ब यहाँ इस दृष्टि से विचारणीय है कि वह भावात्मक प्रतीति के स्तर पर अर्थवान है :

छूने में हिचक, देखने में
पलकें आँखों पर झुकती हैं
कलरव परिहास भरी गूँजें
अधरों तक सहसा रुकती हैं

'कामायनी' में प्रसाद के अग्निसंकेत आदिम बिम्ब की सृष्टि में सहायक हैं। कामायनी की काव्यवस्तु में पृथ्वी, आकाश, जल, अग्नि के विलक्षण संकेत हैं। मनु श्रद्धा के प्रथम मिलन का संकेत इस प्रकार है :

दो काठों की सन्धि-बीच
उस निभृत गुफा में अपने
अग्नि शिखा बुझ गई, जागने
पर जैसे सुख-सपने

इस बिम्ब विधान में 'अग्नि' प्रतीकात्मक अर्थ से सम्पन्न है। बिम्बात्मक प्रतीक या प्रतीकात्मक बिम्ब काव्यभाषा में अलग पहचाने जा सकते हैं। प्रसाद के बिम्बों में दृश्य-संवेदना प्रधान है। पर आप देखेंगे कि उनकी एक विशेषता यह भी है कि वे अस्पष्टता लिये हुए धुँधले भावबोध के स्तर पर ही ग्राह्य होते हैं । 'लज्जा सर्ग' में ऐसे बिम्ब एक पूरी श्रृंखला बनाते हैं :

जो गूँज उठे फिर नस-नस में
मूर्च्छना समान मचलता-सा
आँखों के साँचे में आकर
रमणीय रूप बन ढलता-सा

'मूर्च्छना' शब्द पर ध्यान दें। यह शब्द संगीत के क्षेत्र से आया है और भावमूलक बिम्ब में सहायक है। इन संकेतों के आधार पर आप प्रसाद की काव्यभाषा में बिम्बविधान की सार्थकता का अनुभव कर सकते हैं।

5.3.2 प्रसाद के काव्य-प्रतीक

पहले बिम्ब और प्रतीक के अन्तर को समझ लें। कहा जा सकता है कि जब भावावेग प्रेरित कल्पना मन में एक सहज स्फूर्त बिम्ब तात्कालिक चित्र उपस्थित करती है तो वह 'बिम्ब' होता है। मूर्तता बिम्ब का गुण है पर वह अनेकार्थक, अस्पष्ट हो सकता है। यह बिम्ब जब बार-बार उसी-उसी अर्थ में दुहराया जाता है और लगभग रूढ़ एकार्थक हो जाता है तब वही प्रतीक कहलाता है। आचार्य शुक्ल जब शैली

की दृष्टि से छायावाद की विशिष्टता बता रहे थे तो आभ्यंतर साम्य पर आधारित अप्रस्तुतों का विशेष महत्व बता रहे थे। (हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ0454) । उनका संकेत था कि ऐसे अप्रस्तुत अधिकतर प्रतीक के रूप में ही आते हैं। जैसे - सुख, आनंद, प्रफुल्लता यौवन की व्यंजना के लिए 'उषा''प्रभात' प्रतीक रूप में आ सकते हैं। ये प्रतीक निस्संदेह सामान्य अनुभूति के मेल में ही आते हैं। जैसे आँसू में :

झंझा झकोर गर्जन है
बिजली है, नीरद माला
पाकर इस शून्य हृदय को
सबने आ डेरा डाला

'झंझा' झकोर - आकुलता का प्रतीक है। 'गर्जन' वेदना की तड़प का प्रतीक है। कामायनी का सारा रचनाविधान भी जिसे रूपक कहा जाता है, एक अर्थ में प्रतीक निर्भर ही है। श्रद्धा-इड़ा तो प्रतीक हैं ही। प्रकृति व्यापारों से लिये शब्द भी प्रतीक के रूप में ही आते हैं। कहा जा सकता है कि प्रतीकों का प्रयोग एक ऐतिहासिक जीवन में ही अर्थ प्राप्त करता है। जातीय स्मृति से प्रतीकों को सार्थकता प्राप्त होती है। प्रसाद की 'कामायनी' में मनु श्रद्धा, इड़ा तो प्रतीक हैं ही, देव सभ्यता, सारस्वतनगर, हिमालय, कैलास, प्रलय, संघर्ष आदि भी प्रतीक की तरह प्रयुक्त हुए हैं।

प्रसाद जहाँ रहस्यवाद की शैली अपनाते हैं वहाँ दार्शनिक विचार परम्परा के प्रतीक भी आते हैं। जैसे 'कामायनी' के दर्शन सर्ग में :

शक्ति तरंग प्रलय पावक का
उस त्रिकोण में निखर गठा सा
शृंग और डमरू निनाद बस
सकल विश्व में बिखर उठा सा

यहाँ त्रिकोण, शृंग, डमरू जैसे प्रतीक शैव दर्शन से आये हैं। प्रसाद अपने आनंदवाद के आग्रह से इन प्रतीकों का प्रयोग बंधे हुए ढर्रे पर ही कर रहे हैं। यहाँ काव्यभाषा का वास्तविक सौन्दर्य प्रकट नहीं होता। प्रतीक वहीं कविता के लिए सार्थक हैं, जहाँ कल्पना के बल पर नया संकेत देते हों। जहाँ तक 'कामायनी' के प्रतीकों का सवाल है, वे एक सीमा तक छायावादी आवरण से ढँके हैं, दूसरी ओर आधुनिक युग की वास्तविकता की भी झलक देते हैं।

5.3.3 प्रसाद की भाषा और मिथकीयता

मिथ या मिथक की चर्चा आपको शायद उलझनों से भरी लगे। हम इतना ही मानकर चलें कि मिथ या मिथक पौराणिक कल्पना है। उसका आधार जातीय स्मृति और विश्वास होते हैं। मिथकीय कल्पना कविता के लिए तभी उपयोगी होती है जब कवि जातीय विश्वास में एक तरह का हस्तक्षेप करता है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी कहते हैं कि मिथक तत्व वस्तुत: भाषा का पूरक है। कवि प्रतिभा के स्पर्श से आदिम कल्पना नये मूर्तिविधान में रूप ग्रहण करती है। प्रसाद 'मिथ' को सामूहिक चेतना से ही सम्बद्ध मानते हैं। पर वे भी मिथक को काव्योपयोगी बना पाते हैं- मिथ को व्यक्तिगत स्पर्श देकर।

श्रद्धा मनु की कथा 'कामायनी' में मिथकीय कल्पना भाषा में अवश्य ही कुछ नया जोड़ पाती है :

कुंकुम का चूर्ण उड़ाते -से
मिलने को गले ललकते -से
अंतरिक्ष के मधु उत्सव के
विद्युत् कण मिले झलकते से ('काम' सर्ग से)

यहाँ मिथ का नयापन भी देखने की चीज़ है। प्रसाद की कल्पना नये मिथक रचती है। ऐसे मिथक भी पुराने मिथकों के सम्पर्क में अर्थ प्राप्त करते हैं। प्रसाद की कल्पना मिथक का उपयोग जातीय स्मृतियों की पुनर्रचना के लिए करती है। 'आशा' सर्ग में मनु के प्रश्न इसके लिए उदाहरण हैं :

विश्वदेव सविता या पूषा
सोम मरुत चंचल पवमान

वरुण आदि सब घूम रहे हैं
किसके शासन में अम्लान

इस प्रकार काव्यभाषा मिथकीय कल्पना से एक नया आयाम ग्रहण करती है।

5.3.4 सादृश्यविधान और प्रसाद की काव्यभाषा की बनावट

यहाँ हम "अलंकार-विधान" पद का प्रयोग नहीं कर रहे हैं। सादृश्य विधान पद का प्रयोग व्यापक अर्थ में कर रहे हैं। प्रभाव-साम्य या रूप-गुण-धर्म साम्य को भी इसी में सम्मिलित मानकर। अलंकार को वाणी के विकल्प के रूप में देखा गया है अर्थात् इस रूप में कि कहने के कितने असीमित ढंग एक कल्पनाशील कवि के पास हैं। पर व्यवहार में ऐसे कवि अधिक हुए जिन्होंने अलंकार को चमत्कार तक सीमित किया। छायावादी कवि अलंकार की भी नयी परिभाषा करते हैं। पंत 'पल्लव' की भूमिका में कहते ही हैं- "अलंकार केवल वाणी की सजावट के लिए नहीं, वे भाव की अभिव्यक्ति के विशेष द्वार हैं।" यहाँ हम फिर शुक्ल जी की ही स्थापना की ओर ध्यान दिलायेंगे-"छायावाद बड़ी सहृदयता के साथ प्रभाव-साम्य पर ही विशेष लक्ष्य रखकर चला है। कहीं-कहीं बाहरी सादृश्य या साधर्म्य अत्यन्त अल्प या न रहने पर भी आभ्यन्तर प्रभाव-साम्य लेकर भी अप्रस्तुतों का सन्निवेश कर दिया जाता है।" प्रसाद ने कल्पना के बल पर ही सादृश्य विधान के असंख्य नये रूप अपनी कविता में दिखाये हैं। उनकी अभिव्यक्ति क्षमता का पता सबसे अधिक सादृश्य विधान के रूप में ही दिखाई देता है। हम आपका ध्यान कुछ ऐसी कल्पनाओं की ओर आकृष्ट करेंगे, जिनसे प्रसाद के कवि-स्वभाव का और साथ ही उनकी क्षमता का भी पता चलता है।

'कानन कुसुम' में 'प्रथम प्रभात' शीर्षक कविता में वे लिखते हैं :

मनोवृत्तियाँ खग-कुल-सी थीं सो रहीं
नील गगन-सा शान्त हृदय भी हो रहा

'झरना' में ' किरण' के लिए कल्पना है :

धारा पर झुकी प्रार्थना सदृश
मधुर मुरली-सी फिर भी मौन

'आँसू' की प्रसिद्ध कल्पना है :

जीवन की जटिल समस्या
है बढ़ी जटा-सी कैसी
या मादकता-से आये तुम
संज्ञा-से चले गये थे

'प्रलय की छाया' से यह चित्र :

खिली स्वर्णमल्लिका की सुरभित वल्लरी -सी
गुर्ज्जर के थाले में मरन्द वर्षा करती मैं

कहने की ज़रूरत नहीं कि प्रसाद का सादृश्यविधान रागबोध के विस्तार और वैविध्य की सूचना देता है। विराट कल्पनाएँ बोधवृत्ति के विस्तार का पता देती हैं। ' विस्मृति का स्तूप अचेत' इसी का उदाहरण है। प्रसाद काव्यगत अनुभूति को तीव्र और मूर्त बनाते हैं- नये सादृश्यविधान से ! इसके लिए वे सौन्दर्य-शृंगार-क्षेत्र से आगे भी आते हैं और जीवन तथा संस्कृति के नितांत अजाने क्षेत्रों में प्रवेश करते हैं। सादृश्यविधान की विशिष्टता उनके यहाँ बिम्ब, प्रतीक, मिथक, फैन्टेसी के प्रयोग में भी देखी जा सकती है। इसके आधार पर ही प्रसाद की वायवी अमूर्त कल्पना भी मूर्त रूप ग्रहण करती है :

नीरव निशीथ की लतिका-सी
तुम कौन आ रही हो बढ़ती ?
कोमल बाँहें फैलाए-सी
आलिंगन का जादू पढ़ती।

अब तक हम प्रसाद की बहुत सी काव्यभाषा-विषयक विशेषताएँ देख चुके हैं। आशा है आप इस पहचान को आस्वाद-प्रक्रिया अर्थात् काव्य पाठ के दौरान अधिक समृद्ध कर सकेंगें।

5.4 प्रसाद का काव्य-शिल्प

प्रसाद की काव्यशैली या काव्यशिल्प की चर्चा करते हुए हम भाषायी विशेषताओं को भी शैली के अंग के रूप में देख सकते हैं। पहले भाषा वैशिष्ट्य की चर्चा शैली के अन्तर्गत ही की जाती थी। इस दृष्टि से लाक्षणिक चित्रात्मक भाषा का वैशिष्ट्य शैली का ही वैशिष्ट्य है। छायावाद जैसी काव्यशैली के संदर्भ में प्रसाद वक्रोक्ति के आचार्य कुंतक को तथा ध्वनि के आचार्य आनंदवर्धन को याद करते हैं। शब्द की वक्रता और अर्थ की वक्रता का मर्म बताते हैं। अभिव्यक्ति की भंगिमा समझने के कुछ सूत्र देते हैं। 'काव्य और कला तथा अन्य निबंध' में संकलित पहला ही निबंध 'काव्य और कला' पर है। स्वाभाविक है कि यहाँ प्रसाद का ध्यान शैली या रूप के वैशिष्ट्य पर जाय। जब वे कहते हैं - "काव्य में जो आत्मा की मौलिक अनुभूति की प्रेरणा है, वही सौन्दर्यमयी और संकल्पात्मक होने के कारण अपनी श्रेय स्थिति में रमणीय आकार में प्रकट होती है।" (पृष्ठ 69) यह रमणीय आकार ही शैली-विशेष है जिसे प्रसाद अपनी कविता को देना चाहते हैं। महत्व उन्हें अनुभूति का कहीं अधिक जान पड़ता है। पर स्वीकार करते हैं कि विशिष्ट अनुभूति या नयी अनुभूति नयी अभिव्यक्ति पद्धति की माँग भी करेगी। यहाँ हम प्रसाद के काव्यरूप की विशिष्टता पर विचार करेंगे -- प्रगीतात्मकता और नयी प्रबन्धात्मकता पर। कामायनी प्रबंध काव्य तो है और उस रूप में महाकाव्य भी। पर परम्परागत लक्षणों प्रतिमानों को छोड़कर। प्रगीतात्मकता का एक भी ढंग प्रसाद नहीं अपनाते। यहीं हम छंद, मुक्तछंद, रूप, लय, संगीत पर भी विचार करेंगे।

5.4.1 प्रसाद के काव्यरूप

जब आपका साक्षात् द्विवेदीयुग की तथ्यात्मक इतिवृत्तात्मक शैली वाली कविता से होता है तो आप अक्सर एक भाषण जैसी शैली देखते हैं। जैसी सपाट अन्तर्वस्तु है, वैसी ही शैली है -- सपाट कथन वाली। छन्दों के व्यवहार में संस्कृत छन्दों की ओर या हिन्दी के पुराने छन्दों की ओर ही कवियों का ध्यान है। मुक्तक प्रणाली की कविताएँ भी नवीनता की कोई झलक नहीं देतीं। अलंकार हैं तो पुराने ढंग के ही -- जो रूढ़ि बन चुके हैं।

अब प्रसाद के काव्यरूपों की नवीनता देखें जो छायावादी काव्य-शैली के अन्तर्गत नयेपन का आभास कराते हैं। पहले प्रगीतात्मक शैली की कविताएँ -- नये छंद विधान का परिचय देती हुईं या लोकछंदों का नया संस्कार ग्रहण करती हुईं। 'कामायनी' का एक गीत 'सरस्वती' पत्रिका में 1935 में प्रकाशित हुआ था :

तुमुल कोलाहल कलह में
कह हृदय की बात रे मन
विकल होकर नित्य चंचल
खोजती जब नींद के पल
चेतना थक सी रही तब
मैं मलय की बात रे मन - ('निर्वेद' सर्ग से)

इस गीत में क्या नयापन है ! क्या इसका संगीत लोकधुन या लय से प्रभावित है ! क्या इसका संगीत लोकधुन या लय से प्रभावित है ! कोमल पद-विन्यास, वाक्य विन्यास, वाक्य-लय। इनके साथ ही प्रगीतात्मकता की नयी पहचान बनती है। छायावाद की प्रगीतात्मक अभिव्यक्ति की विशेषताएँ आपका ध्यान ज़रूर आकृष्ट करती होंगी।

'लहर' के एक गीत की बनावट पर ध्यान दें। इसमें क्या नया है, यह इसलिए भी विचारणीय है कि किसी अज्ञात नियम से भी छायावादी रूपविधान की नवीनता हमें आकृष्ट करती है। गीत इस प्रकार है:

वे कुछ दिन कितने सुन्दर थे!
जब सावन-घन-सघन-बरसते -
इन आँखों की छाया भर थे!
सुरधनु रंजित नव जलधर से -

भरे, क्षितिज व्यापी अम्बर से,
मिले चूमते जब सरिता के
हरित कूल युग मधुर अधर थे!

छायावादी प्रगीतात्मकता की विशेषताओं को निराला, पंत, महादेवी के गीतों के साथ देखना भी आपके लिए उपयोगी होगा।

'लहर' में संकलित 'अशोक की चिंता' जैसी कविताओं को 'आख्यानक प्रगीत' कह सकते हैं। यहाँ ढाँचा भर प्रगीत जैसा है, सारा बल आख्यान पर है। इससे भिन्न स्थिति 'प्रलय की छाया', 'शेर सिंह का शस्त्र समर्पण' जैसी लम्बी कविताओं की है। पूरी कविता लम्बी कविता का ऐसा आदर्श है जिसमें प्रगीतात्मकता तथा नाटकीयता का सहज समावेश है। 'प्रलय की छाया' जैसी लम्बी कविता को भी आख्यानक प्रगीत कहा गया है पर अब जब हमारे समक्ष 'राम की शक्तिपूजा', 'सरोज स्मृति' (निराला) 'अँधेरे में' (मुक्तिबोध) तथा 'असाध्य वीणा'(अज्ञेय) जैसी लम्बी कविताओं के रचनाविधान की विशिष्टता है, हम 'प्रलय की छाया' को लम्बी कविता ही कहेंगे। यहाँ मुक्तछंद में भी प्रगीतात्मकता की लय बनी हुई है। पर इस कविता के रूप संगठन को, रूप प्रकार को आप गहन अध्ययन के आधार पर समझ सकेंगे। यह कविता 'हंस' 1931 में प्रकाशित हुई थी जब लम्बी कविता का आदर्श विकसित न था। लम्बी कविता के रूप में 'प्रलय की छाया' भी प्रगीतात्मकता तथा नाटकीयता को मुक्त छंद के विन्यास में संभाले हुए है।

'प्रलय की छाया' के रूपगठन को ध्यान से देखें। फ्लैशबैक या पूर्वदीप्ति शैली में यह नाटकीय कविता गुर्जर रानी कमलावती की असफल रूपगाथा का पछतावे से भरा एकालाप है। इस कविता का विस्तृत मूल्यांकन हम आगे करेंगे। अभी तो हम इसे लम्बी कविता के रूप में देखें, जिसमें नाटकीयता तथा प्रगीतात्मकता के समावेश से एक नया काव्य-रूप बनने की संभावना है। क्षीण-कथा में यह एक स्त्री-मन का एकालाप है। कविता का आरंभ धूसर रंग की सन्ध्या से होता है और अवसान भी कालिमा की धारा में परिणत होने वाली रक्तमयी प्रगाढ़ सन्ध्या से। इस दृष्टि से इसकी संरचना वर्तुलाकार है। आरंभ से अंत के सूत्र इस तरह मिलते हैं कि अन्विति सी घटित होती है। यह अन्विति ही प्रगीतात्मकता का आधार है। अन्तःसंवाद एक नाटकीय प्रभाव पैदा करते हैं। आरंभ के इस चित्र को देखें जो आत्मविषाद का चित्र है लेकिन इसे विन्यास की दृष्टि से देखें। एक लम्बी कविता का आरंभ इस प्रकार है :

थके हुए दिन के निराशा भरे जीवन की
सन्ध्या है आज भी तो धूसर क्षितिज में।

और उस दिन तो :

निर्जन जलधि-वेला रागमयी सन्ध्या से-
सीखती थी सौरभ से भरी रंगरलियाँ।
स्मृतियाँ सब सन्ध्या की। अंत से पहले भी-

एक दिन संध्या थी :

मलिन उदास मेरे हृदय-पटल-सा
लाल-पीला होता था दिगन्त निज क्षोभ से

और अन्त :

गिरता नक्षत्र नीचे कालिमा की धारा-सा
असफल सृष्टि सोती
प्रलय की छाया में।

अभी इतना ही याद रखें कि इस लम्बी कविता में प्रगीतात्मकता नाटकीयता का समावेश क्या अर्थ रखता है- वस्तु के अनुरूप।

'कामायनी' छायावादी शैली का अकेला महाकाव्य है। कथाप्रधान महाकाव्यों के शास्त्रनिर्दिष्ट लक्षणों से

अलग महाकाव्य है। नायक मनु कमज़ोर विभाजित द्वन्द्वशील दुविधाग्रस्त पात्र है, जिसे धीरोदात्त नहीं कहा जा सकता। निर्वाह के लिए महाकाव्य के लक्षणों को समाविष्ट करने का प्रसाद ने कोई प्रयास नही किया है। यहाँ भी प्रबन्ध के बावजूद खंड-खंड रूपों में प्रगीतात्मकता के लिए संभावना है। कथा-सूत्र ध्यान में आते हैं। वे मिलकर एक नाटकीय लय बनाते हैं। कार्य-व्यापार का अभाव है। वस्तुविन्यास बहिर्मुख न होकर अन्तर्मुख है। जैसा डॉक्टर नगेन्द्र कहते हैं- कामायनी महाकाव्य है पर मानव चेतना का महाकाव्य है। (कामायनी के अध्ययन की समस्याएँ / नगेन्द्र) जहाँ स्थूल घटनाएँ प्रधान हैं जैसे प्रलय वर्णन, संघर्ष आदि में वहाँ तो भावप्रवाह मूर्तता सघनता लिये हुए है। वर्णन में आवेग प्रबल है। जहाँ अंतर्मुखता प्रधान है, जैसे 'श्रद्धा' सर्ग में मनु-श्रद्धा-संवाद, वहाँ प्रगीतात्मकता ही प्रधान है- निस्संदेह कथा-लय बनाती हुई। भव्य और उदात्त के लिए जहाँ संभावना है, वहाँ वे हैं, पर शास्त्रनिर्दिष्ट लक्षणों से अलग। प्रसाद जो काव्यरूप चुनते हैं उनमें उनका अपना क्या है, यह जानने की उत्सुकता आपमें होनी चाहिए।

5.4.2 छंद और छंद मुक्ति

छायावादी कवियों ने छंद के भीतर ही छंदमुक्ति का प्रयास किया या मुक्त छंद का प्रयोग किया। निराला ने कविता की मुक्ति की चर्चा करते हुए स्पष्ट किया था कि वे छंदहीन कविता का समर्थन नहीं कर रहे हैं। मुक्त छंद भी छंद है। प्रसाद ने जहाँ मुक्त छंद का प्रयोग किया है वहाँ भी प्रगीतात्मकता का अपना बीज रूप दिखाई देता है।

प्रसाद के यहाँ छंद और मुक्त छंद की स्थिति देखें। पहले तो यही बात ध्यान में रखें कि वाक्य छंद की इकाई है। गद्य पद्य सभी में एक तरह का छंद होता है जो वाक्य की गति लय में ही छिपा रहता है। नामवर सिंह की इस व्याख्या को भी ध्यान में रखें : " छायावादी कवि के जिस हृदयस्पन्दन ने वाक्यविन्यास को प्रभावित किया, उसी ने वाक्यविन्यास के माध्यम से छंदविधान का भी निश्चय किया। छायावाद का यह हृदय स्पंदन मुख्यत : प्रगीत-भावना थी। छायावादी छंदों में से अधिकांश का निश्चय प्रगीत-भावना ने किया।"(छायावाद, सं0 उदयभानु सिंह, पृष्ठ 154-155) प्रसाद ने फ़ारसी बहर में भी कविताएँ लिखीं जैसे :

'न छेड़ना उस अतीत स्मृति के खिंचे हुए वीन तार कोकिल'

लोकछंदों के प्रभाव से प्रसाद ने कई बार नया छंद बना लिया। जैसे 'आल्हा' के प्रभाव से : तीस मात्राओं का यह छंद :

'उषा सुनहले तीर बरसती जयलक्ष्मी सी उदित हुई'

'लावनी' का प्रभाव लेकर : बत्तीस मात्राओं का यह छंद :

'कौन तुम संसृति जलनिधि तीर तरंगों से फेंकी मणि एक'

'रोला' छंद का प्रयोग देखें : संघर्ष सर्ग में :

श्रद्धा का था स्वप्न किन्तु वह स्वप्न बना था

'आँसू' सखी छंद में है। 'कामायनी' का आनंद सर्ग भी इसी छंद में :

रो रोकर सिसक सिसक कर कहता मैं करुण कहानी

प्रसाद का योगदान यह है कि उन्होंने पुराने छंदों का, लोकछंदों का नया उपयोग किया। जहाँ तक 'प्रलय की छाया' जैसी कविताओं के मुक्त छंद का प्रश्न है हम पहले ही स्पष्ट कर चुके हैं कि यहाँ प्रगीतात्मकता तथा नाटकीयता का सन्निवेश ही मुक्त छंद को सार्थक बनाता है।

5.4.3 छंद, लय और संगीत

प्रसाद का अपना भाषा-संगीत है जो छंद के बहुरूपात्मक प्रयोगों में देखने योग्य है। प्रसाद के नाट्य गीतों में संगीत और लय का विन्यास भाषा और रूप दोनों को प्रभावित करने वाला है। 'न छेड़ना उस अतीत स्मृति से खिंचे हुए वीन तार कोकिल' स्कंदगुप्त का नाट्यगीत ही है। 'स्कंदगुप्त' में देवसेना का अंतिम गीत- 'आह वेदना मिली विदाई' संगीतात्मक विन्यास के लिए महत्वपूर्ण रचना है।

प्लेटो ने कविता को संगीत के अंतर्गत मान्यता दी, यह बात प्रसाद को 'काव्य और कला' निबंध में अलग से विचारणीय लगती है। पर प्रसाद ही कहते हैं- "संगीत के द्वारा मनोभावों की अभिव्यक्ति केवल ध्वन्यात्मक होती है। वाणी का संभवत : वह आरंभिक स्वरूप है" । इस दृष्टि से वह कविता की जगह लेने वाली विधा नहीं है। कविता का स्थानापन्न नहीं है। पर कविता को जीवन देने में, देर तक कविता की गूँज को जिलाये रखने में उसका महत्व है।

5.4.4 अन्य पक्ष

हम यहाँ फिर कहना चाहेंगे कि प्रसाद की भाषा और उनके शिल्प सम्बन्धी अध्ययन में ' विशेषण' शब्दों को ध्यान से देखें। इनसे प्रसाद के कवि-स्वभाव का पता चलता है :

जैसे, मधुमय, सुरभित, पुलकित, शिथिल, हेमाभ, नीरव, हठीला, मूर्च्छित, मूक.....।

'ध्वांत' ' ऊर्जस्वित' जैसे शब्दों को भी प्रसाद पूरे पदविन्यास में कैसे खपा लेते हैं यह भी हमें देखना चाहिए। इसलिए ज़रूरी है-कविता का सीधा प्रत्यक्ष पाठ।

5.5 'काव्य पाठ' के चयन के आधार पर प्रसाद का मूल्यांकन

हम अपेक्षा करेंगे कि आप चयन के लिए निर्धारित पाठ के सीधे सम्पर्क में हैं। यह सारी व्याख्या, यह सारा विश्लेषण किसलिए ! कविता की आस्वाद-क्षमता विकसित करने के लिए। फिर आप ही विश्लेषण करेंगे। आप ही मूल्यांकन। ये सारे विचार-सूत्र सीधे पाठ की प्रेरणा के लिए हैं। आपके लिए विशिष्ट निर्धारित पाठ यह है :

-- कामायनी का श्रद्धा सर्ग
-- आँसू
-- प्रलय की छाया

हम अब इनके पाठ-विश्लेषण के सूत्र भर सुझा रहे हैं। काव्यशिल्प की विशिष्टता के निर्देश के साथ।

5.5.1 प्रसाद का काव्यशिल्प और 'कामायनी' का श्रद्धा सर्ग

'श्रद्धा', 'कामायनी' का अत्यंत महत्वपूर्ण सर्ग है। कामायनी भी श्रद्धा ही है। स्वाभाविक है कि प्रसाद की मूल भावधारा और विचारधारा इस सर्ग में अभिव्यक्ति पा सके। पर अधिक महत्वपूर्ण है मनु-श्रद्धा मिलन प्रसंग का कलात्मक संयोजन। हम पहले बता चुके हैं कि ' कामायनी' नये प्रकार का प्रबन्ध है। प्रबन्ध में प्रगीत और नाटक का-सा विन्यास प्रकट है। श्रद्धा का आगमन ही नाटकीयता लिये हुए है। मनु से आकस्मिक प्रश्न करती हुई वह जैसे जीवन के रंगमंच पर आती हो। मनु-श्रद्धा के संवाद में उनके अपने-अपने मनोभावों की भी अभिव्यक्ति है। संवाद आत्मसंवाद लगने लगता है :

क्या कहूँ क्या हूँ मैं उद्भ्रान्त
विवर में नीलगगन के आज

श्रद्धा का सौन्दर्य मनु को चकित करने वाला है- बाह्य शरीर के आकर्षण से ही नहीं, मन की उदारता गुणवत्ता के आकर्षण से भी। श्रद्धा के व्यक्तित्व में एक छंद है। वह सजग इतनी है कि मनु की दुर्बलता की तह तक जाती है- इस पूछने के ढंग में बहुत कुछ है- राग-विराम का द्वन्द्व , विराग के छल की निस्सारता,राग की उत्तेजना। कहा जा रहा है शांत ढंग से पर उद्वेग भरा हुआ है- मन में भी और शब्दों में भी। श्रद्धा पूछती है :

हृदय में क्या है नहीं अधीर
लालसा जीवन की निश्शेष?
कर रहा बंचित कहीं न त्याग
तुम्हें, मन में धर सुन्दर वेश।

श्रद्धा सर्ग का संगठन विलक्षण है। दार्शनिक कथन भी जैसे प्रगीतात्मक की लय को तोड़ता नहीं है। श्रद्धा के व्यक्तित्व के अनुरूप मंगलकामना की उदारता के साथ।

प्रसाद की काव्यशैली की जो भी विशेषताएँ कही जाती हैं - अलंकार या सादृश्यविधान, बिम्ब, प्रतीक, मिथक का काव्यभाषा में रचाव, भाषा में चित्रमयता की प्रवृत्ति, लाक्षणिकता का साहस, संगीतात्मकता- 'श्रद्धा' सर्ग में इन विशेषताओं को हम प्राय: लक्षित करते रहे हैं। आप इन्हें पुन: अभ्यास-क्रम में निर्दिष्ट करें और अपने ढंग से इन विशेषताओं की व्याख्या करें। ये संकेत पर्याप्त होंगे। देखें कि इनमें कुछ और विशेषतायें भी शायद आपके अपने पाठ में आकर जुड़ें।

5.5.2 'आँसू' और प्रसाद की शिल्पगत विशिष्टता

हमने प्रसाद की शिल्पगत विशेषताओं की ओर इस अध्ययन-क्रम में पहले भी आपका ध्यान आकृष्ट किया है। हम आपका ध्यान यहाँ रमेशचंद्र शाह के एक निबंध की ओर ले जाना चाहेंगे। निबन्ध का शीर्षक है, "आँसू की प्रयोगशाला में प्रसाद" । शाह की व्याख्या है- "आँसू में कोई निश्चित संरचनात्मक ढाँचा नहीं है। यह भी नहीं कहा जा सकता कि इसके छंदों में अनिवार्य पूर्वापरकता है ही।" (छायावाद की प्रासंगिकता, पृष्ठ 110) । इसलिए स्वाभाविक है कि इस कृति की विधा को नाम देने की स्पष्ट सुविधा आलोचकों के पास न हो। वे इसे कथा-सूत्र के कारण गीतात्मक प्रबन्ध कहते हैं। मुक्तक-प्रबंध के बीच का एक नया काव्य-रूप। यहाँ छन्द प्रयोग में तराश और दीप्ति की झलक है। वाक्यविन्यास कई बार सूक्ति के निकट जान पड़ता है :

मानव जीवन वेदी पर / परिणय हो विरह मिलन का
सुख दुख दोनों नाचेंगे / है खेल आँख का मन का

इसमें सन्देह नहीं कि 'आँसू' में कलापक्ष का परिष्कार या निखार दिखाई देता है। रचनाविधान की विलक्षणता के साथ प्रसाद की जानी-पहचानी विशेषताएँ सहज ही लक्ष्य की जा सकती हैं जैसे विलक्षण कल्पना का भाषा में रचाव, रमणीय कल्पना, लयपूर्ण चित्रात्मक भाषा, लाक्षणिकता, प्रतीक विधान, नये प्रकार के अप्रस्तुतों का प्रयोग। इन्हें आप अभ्यास-क्रम में सहज ही देख सकेंगे।

5.3.3 प्रलय की छाया : रूपबंध : लंबी कविता के रूप में मूल्यांकन

'प्रलय की छाया' को जीवन की अनेक रंगीन सन्ध्याओं की कलादीर्घा कहा गया है। यहाँ स्त्री के विफल सौन्दर्य के तीखे अनुभव के साथ रूपगर्व की मादक स्मृतियाँ हैं-फ्लैशबैक या पूर्वदीप्ति की तरह। स्त्री का रूप गर्व, लालसा, प्रतिशोध, विवशता,अहंकार, वासना,ग्लानि- जैसे अनुभव एक श्रृंखला-सी बनाते हैं- घटनाक्रम में आगे-पीछे चलकर। आख्यान इतिहास-आधारित है पर प्रसाद उसमें बहुत कुछ बदल देते हैं। इतिहास में खुसरू और मानिक एक नहीं हैं। प्रसाद के यहाँ एक हैं। अलाउद्दीन स्वास्थ्य बिगड़ने और सामंतों के विद्रोह से चिन्तित होकर मरा था। प्रसाद ने मानिक द्वारा उसकी हत्या करा दी है। वहाँ कमलावती भारतेश्वरी हो जाती है जो इतिहास-प्रमाणित नहीं है। ये सभी परिवर्तन प्रसाद ने काव्य-न्याय से किये हैं क्योंकि प्रलय की छाया इतिहास नहीं है, लम्बी कविता के रूप में कमलावती के स्त्रीमन के द्वन्द्वों का विश्लेषण है। कविता के विशिष्ट रचनाविधान के भीतर।

पहले कविता की अंतर्वस्तु: प्रभुत्व के उन्माद तथा प्रतिशोध से प्रेरित खुसरू की व्यंगवाणी से मर्माहत कमला आत्मावलोकन के रोमांचकारी क्षणों में डूब जाती है। वह क्षण याद आता है जब कमला अपनी ही सुगंध से पागल हो उठती है। लहरीली नीली अलकावली सी लहरें उसे चूमने लगती हैं। नृत्यशीला यौवन की स्मृतियाँ खिलखिलाती हैं। कल्पना कुमारियाँ अप्सरा-सी उसका श्रृंगार करती हैं। आत्मरति में मुग्ध कमला देखती है-- गुर्जरेश को प्रणत होते हुए। कामद किरणों से कमला की चंद्रकांतमणि जैसी अंगलतिका स्निग्ध मसृण हो गई है। उसके साहचर्य की मरन्द वर्षा से गुर्जरेश का जीवन सुख सौरभ से भर उठता है।

फिर एक और सन्ध्या आती है। बलिदान की, पद्मिनी के जौहर की, चारों ओर पवित्र आग की सुगंध फैली है। कुलवधुओं, कुमारियों को विषमय परतंत्रता बींधने लगती है। पर कमला मरने की जगह मारने का रास्ता चुनती है :

पद्मिनी जली थी किन्तु मैं जलाऊँगी
वह दावानल ज्वाला जिसमें सुलतान जले
देखे तो प्रचण्ड रूप - ज्वाला - सी धधकती
मुझको सजीव वह अपने विरूद्ध

यह एक क्षण है जब देश पराजित है। तुर्कों के अधीन। पति-पत्नी दोनों संकट में। गुर्जरेश का छल। वे दूर निकल जाते हैं। कमला बन्दिनी है। प्रतिशोध से विकल। पर मन में द्वन्द्व अनेक। कभी वह पति का प्रतिशोध लेना चाहती है, कभी सुलतान के मन में अपने उद्दाम रूप का आकर्षण जगाना चाहती है। रंगमहल में स्मृतियों में डूबी सुलतान को वश में किए। तभी दिख जाता है मानिक। पूर्वप्रेमी मानिक। क्या मरने आया है वह ! नहीं जीवन की आशा लेकर आया है। बन्दी बना लिया जाता है वह। कमला रूपगर्विता, छल से सुलतान की 'प्रेमगर्विता' भी- वह मानिक का जीवन बचा पाती है। पति कर्णदेव की मृत्यु की सूचना का क्या अर्थ ! वह तो भारतेश्वरी बनने की कल्पना में है। तभी मानिक सुलतान की हत्या कर देता है। मानिक का धिक्कार उसे भीतर ही भीतर क्षुब्ध करने लगता है। ग्लानि और पछतावा। यही 'प्रलय की छाया' का अंत है - अंधकार तक। इसी अर्थ में कहा गया है कि इसकी संरचना वर्तुलाकार है।

कहीं रागमयी संध्या के पर्दे पर शैशव-यौवन की प्रगल्भता जैसे मुग्धावस्था में ही संक्रमित। एक मादक संध्या। फिर एक और मादक संध्या। फिर एक छलनामयी संध्या जो रात्रि की कालिमा तक जा पहुँचती है। एक तीखी विलक्षण सादृश्य योजना :

कृष्णा वह आई, फिर रजनी भी
खोलकर ताराओं की विरल दशनपंक्ति
अट्टहास करती थी, दूर मानों व्योम में

एक वह संध्या - उन्माद-अभिमान का संयोग। यहाँ कमला के लिए प्रसाद प्रतीक चुनते हैं - कृष्णा गुरूवर्तिका :

कृष्णा गुरूवर्तिका
जल चुकी स्वर्णपात्र के ही अभिमान में
एक धूम रेखा मात्र शेष थी
उस निस्पंद रंग मन्दिर के व्योम में
क्षीण गन्ध निरवलम्ब

एक उजाड़ धूसर सन्ध्या फिर आती है - कालिमा की धारा में विलीन होती। इस तरह देखें तो सभी सन्ध्याएँ छायावाद की विशेषताओं (रागात्मकता, चित्रात्मकता, लाक्षणिकता, ध्वन्यात्मकता, प्रतीकात्मकता, सादृश्यविधान की नवीनता) को एक रचनाविधान में पुष्ट करती हैं और प्रगीतात्मकता तथा नाटकीयता के सन्निवेश से 'लम्बी कविता' जैसे रूप का नया प्रतिमान बनाती हैं। स्मृत्तियों पर आधारित आत्मसंलाप या एकालाप। मन के भीतर के द्वन्द्वों में सक्रिय अन्त: संवाद। कविता में लय रचती हुई कोमल शब्दावली। रूपविधान में विलक्षण कसाव। इन विशेषताओं को लक्ष्य करते हुए आप इस कविता का एक खास अपना मूल्यांकन कर सकेंगे।

5.6 सारांश

इस व्याख्यान-पाठ में हमने आपको प्रसाद की काव्यभाषा और काव्यशिल्प के प्रति उत्सुक सजग बनाने की चेष्टा की है। हमने क्रमश : स्पष्ट करना चाहा है कि :

- प्रसाद छायावाद के कवि हैं - छायावादी काव्यशैली और भाषा की विशेषताओं से सम्पन्न;
- यह छायावाद द्विवेदीयुगीन इतिवृत्तात्मकता के विरूद्ध सूक्ष्म शैली और रूपविधान पर इतना बल देते हुए आया, कि शुक्ल जी को वह मुख्यत : काव्यशैली प्रतीत हुआ;
- प्रसाद ने स्वयं जिन विशेषताओं की पहचान बनायी वे हैं - स्वानुभूति प्रेरित नयी कल्पना, नया सादृश्य विधान, चित्रात्मकता, लाक्षणिकता, प्रतीकात्मकता, संगीतात्मकता, उपचार वक्रता, बिम्ब-प्रतीक-मिथक-सादृश्यविधान के अन्तर्सम्बन्ध को आत्मसात करने वाला नया भाषिक संगठन, प्रगीतात्मक-नाटकीयता का सहसंयोजन.... आदि;
- प्रसाद रमणीय कल्पना के लिए ही नहीं, उदात्त कल्पना के लिए, विराट कल्पना के लिए, आदिम कल्पना के लिए भी महत्वपूर्ण हैं;

- प्रसाद ब्रजभाषा से खड़ी बोली तक और अनगढ़ खड़ीबोली से संवेदनसमृद्ध खड़ीबोली काव्यभाषा तक-लम्बी यात्रा करने वाले कवि हैं;
- प्रसाद पुराने ग़ायब हो चुके शब्दों को, छन्दों को पुनर्जीवन देने वाले कवि हैं;
- अलंकार से अधिक बिम्ब में प्रसाद की रूचि है-- बिम्ब भी कभी प्रतीकात्मक, कभी मिथकीय;
- प्रसाद का छंद संगठन प्रगीतों में तो महत्वपूर्ण है ही, उनके मुक्त छंद सम्बन्धी प्रयोग भी उतने ही महत्वपूर्ण हैं। वहाँ भी छंद का मूल आधार लिया गया है। प्रसाद ने लोकछंदों के पुन : संस्कार से भी नयी काव्यात्मक सार्थकता सिद्ध की है। प्रसाद जिस प्रकार प्रगीतात्मकता में खास नयापन लाते हैं, उसी प्रकार महाकाव्यात्मकता की नयी पद्धति या शैली विकसित करते हैं।

इस इकाई को इससे पूर्व की इकाई से सम्बद्ध करके देखें। तब आप स्वयं प्रसाद की भाषा और काव्यशैली की विशेषताओं को ठीक तरह से समझ सकेंगे और अपने अनुभवों के आधार पर संभवत : नयी विशेषताओं का निर्धारण भी कर सकेंगे।

5.7 शब्दावली

संदर्भों के बीच बार-बार यह शब्दावली आती है। ये कठिन शब्द नहीं हैं, संदर्भों के बीच सहज ग्राह्य हैं। पर इन पर ध्यान देना आवश्यक है। ये वे शब्द हैं जो काव्यगत विशेषताओं को ठीक-ठीक निर्दिष्ट करते हैं। इनमें अर्थ की निश्चितता भी है। इनका प्रयोग विशेष संदर्भ में ही किया जाना चाहिए।
स्वच्छन्द कल्पना / मिथकीय कल्पना / स्वानुभुति की विवृति / संश्लिष्ट बिम्ब / संवेदनात्मक बिम्ब / इतिवृत्तात्मक / बोधवृत्ति / दृष्टि कल्पना / ध्वनि कल्पना / स्मृतिविधायिनी कल्पना / आदिम बिम्ब / आभ्यंतर साम्य। पहले पाठ के शब्दों को भी ध्यान में रखें-जैसे :

प्रतीयमान / लाक्षणिकता / ध्वन्यात्मकता / उदात्त की अवधारणा

5.8 प्रश्न

1. प्रसाद की काव्यभाषा की प्रमुख विशेषताएँ बताइये।
2. छंद, लय, संगीत एवं काव्यरूप की दृष्टि से प्रसाद के काव्य का मूल्यांकन कीजिए।
3. काव्य-शिल्प की दृष्टि से ' कामायनी' के ' श्रद्धा' सर्ग की विशेषताएँ बताइये।
4. प्रसाद के बिंब-विधान, रूपक-विधान और उनकी प्रतीक योजना के महत्व पर प्रकाश डालें।

इकाई 6 सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' के काव्य का वैचारिक आधार

इकाई की रूपरेखा

6.0 उद्देश्य
6.1 प्रस्तावना
6.2 निराला काव्य की आलोचना के प्रचलित आधार
6.3 निराला के काव्य का वैचारिक आधार
6.3.1 मुक्ति का दर्शन/चिंतन
6.4 विभिन्न वैचारिक आधार वाली कविताएँ
6.5 सारांश
6.6 प्रश्न

6.0 उद्देश्य

इससे पूर्व आपने छायावाद के पुरस्कर्ता जयशंकर प्रसाद के काव्य का अध्ययन कर लिया है। यह इकाई छायावादी कवि सूर्यकांत त्रिपाठी के काव्य पर आधारित है। इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप निराला काव्य की अब तक हुई आलोचना और आलोचना दृष्टियों की कतिपय अपर्याप्तता से परिचित हो सकेंगे। आप यह भी जान सकेंगे कि किस प्रकार आलोचकों ने निराला के व्यक्तित्व और निजी जीवन को उनके काव्य पर चस्पां करते हुए कैसे निष्कर्ष निकाले हैं। हर रचना का एक वैचारिक परिप्रेक्ष्य और अपना एक वैचारिक आधार होता है जो रचनाकार के निजी व्यक्तित्व और जीवन से मुक्त होता है और जिस की जाँच पड़ताल रचना की अपनी स्वायत्तता में तथा युग-संदर्भ में ही हो सकती है। निराला काव्य का वृहत्तर वैचारिक आधार क्या है और भिन्न-भिन्न कविताओं के वैचारिक आधारों में कैसी समानता/भिन्नता है, इसका अध्ययन भी आप इस इकाई में करेंगे।

6.1 प्रस्तावना

हिंदी आलोचना में रचनाकारों को समझने के उपक्रम में उनकी रचनाओं के वैचारिक परिप्रेक्ष्य को वस्तुगत ढंग से जाँचने की परंपरा ज्यादा सुदृढ़ दिखाई नहीं पड़ती। अधिक से अधिक युगीन परिस्थितियों को ज्यों का त्यों उल्लिखित कर दिया जाता है और यह देखने, विश्लेषित करने के प्रयास कम ही किए जाते हैं कि लेखक की रचनाओं का उन परिस्थितियों से आवयविक संबंध कैसा है। परिस्थितियों की बात करते समय लेखक की रचनाओं को तो भुला ही दिया जाता है। और रचनाओं का विश्लेषण करते समय भाषा, रूप, संरचना, कथ्य की चर्चा भी साहित्य परंपरा और परिस्थितियों से निरपेक्ष रहकर ही की जाती है। ऐसे खंड-खंड विश्लेषण के बाद लेखक के बारे में कुछ ऐसे सूत्र गढ़ दिए जाते हैं कि उसे जानने-समझने की ज़रूरत लगभग खत्म हो जाती है और रचना आलोचना के उस बने-बनाये सूत्रात्मक गढ़ से बाहर नहीं निकल पाती। फलतः रचनाकार महान, प्रगतिशील, प्रयोगवादी, आदर्शोन्मुखी यथार्थवादी, समाजवादी, आँचलिक, मनोविश्लेषणवादी इत्यादि होकर रह जाता है।

प्रस्तुत इकाई में प्रारंभ में निराला के संदर्भ में उनकी आलोचना की इसी प्रकार की प्रचलित धारणाओं की कमियों का उद्घाटन किया गया है और बताया गया है कि किस प्रकार आलोचक कवि निराला के जीवन, व्यक्तित्व को उनकी रचनाओं के संदर्भ में आरोपित करते रहे हैं और किस प्रकार रचना का मूल मर्म, संवेदना इन आरोपों के कारण धुंधली पड़ती गई है।

ज़रूरत है रचना को एक स्वायत्त सत्ता या इकाई मानकर समझने की। इस समझ को पुख्ता करने के लिए रचनाकार को जानना, रचना के वैचारिक परिप्रेक्ष्य को समझना भी ज़रूरी है। तभी रचना अपनी समस्त संभावनाओं के साथ पाठक के सामने आ सकती है। किसी भी रचना के वैचारिक आधार को जानने के लिए उस रचना के भीतर यह देखने की ज़रूरत है कि अपने युग के किस विचार दर्शन, प्रणाली, पद्धति को आधार बनाकर उस रचना ने आकार ग्रहण किया है। जहाँ तक निराला का संबंध है तो यह तो आप जानते ही हैं कि साहित्य में छायावाद युग से जाना जाने वाला युग स्वतंत्रता आंदोलन

के विकास का भी युग था और निराला इसी युग में रचनारत थे। स्वतंत्रता आंदोलन के युग की मूल चेतना मुक्ति का एक ऐसा वृहत्तर स्वप्न रही है जो साहित्य में, राजनीति में, समाज में हर जगह व्याप्त था। मुक्ति का यही वृहत्तर स्वप्न उस युग का वैचारिक आधार था जिसकी नींव पर साहित्य, कला की मीनारें खड़ी हुईं। रूढ़ियों से मुक्ति, पुराने सड़ चुके बंधनों से मुक्ति, साहित्य में पारंपरिक भाषा, रूप-बंध, अलंकार, छंद से मुक्ति। निराला के काव्य का वैचारिक आधार भी यही मुक्ति का चिंतन था जिसे इकाई में आगे विस्तार से विश्लेषित किया गया है।

पूरे युग की एक वृहत्तर चेतना के भीतर कई विचार दर्शन, प्रणालियाँ, पद्धतियाँ सक्रिय रहती हैं, जो एक ही लेखक की विभिन्न रचनाओं के सृजन की वैचारिक आधार भी बनती हैं।। निराला की इसी प्रकार की विभिन्न वैचारिक आधारों वाली कुछ कविताओं को इस संदर्भ में विश्लेषित भी किया जाएगा।

तो आइए, निराला के काव्य की आलोचना की प्रचलित धारणाओं से अपनी बात शुरू करें।

6.2 निराला काव्य की आलोचना के प्रचलित आधार

निराला की कविता पर लिखते समय आलोचकों ने उनके निजी जीवन या "निराला के मन" का ज्यादा विश्लेषण किया है, कविता को उसी विश्लेषण के गवाह के तौर पर इस्तेमाल किया है। उनकी कविताओं की सापेक्ष स्वायत्तता और उन कविताओं की अंतर्निहित विचार-सरणि को अक्सर अनदेखा किया गया है। विश्व भर में आलोचना के क्षेत्र में जो सैद्धांतिक विमर्श अब तक सामने आये हैं, उनसे यह बात तो स्पष्ट है कि किसी कवि की घोषित विचारधारा और उसकी रचना में रची-बसी विचारधारा एक ही हो, यह ज़रुरी नहीं। रचना एक भाषिक संरचना होती है और वह समाज में एक स्वायत्त कला इकाई के रुप में अस्तित्व रखते हुए भी अपने देश और काल की किसी न किसी विचारधारा का अंग होती है। इस रुप में वह लेखक के निजी जीवन और निजी विचारधारा से भी स्वतंत्र हो जाती है। निराला के आलोचकों ने रचना की इस स्वतंत्रता को अनदेखा करके ज्यादातर कविताओं को कवि के निजी जीवन से जोड़ दिया है। आइए, कुछ आलोचकों की इस पद्धति की बानगी ली जाये।

निराला के जीवन और साहित्य पर डॉ. रामविलास शर्मा ने सबसे अधिक लिखा है। उनकी आलोचना पद्धति को बारीकी से देखें तो एक शब्द बार-बार आता है, "निराला का मन", "निराला स्वयं"। वे लिखते हैं, "निराला के मन में गंध के प्रति प्रबल आकर्षण है।" (निराला की साहित्य साधना-2, पृ0224,) फिर शूर्पणखा के एक कथन से "गुलाब" का उदाहरण देते हुए "शूर्पणखा के मन में राम का सौंदर्य गुलाब जैसा" बताते हैं और दो पंक्तियों का उद्धरण दे कर टिप्पणी करते हैं कि "यहाँ कवि के मन में गुलाब के प्रति कोई ऐसा मोह नहीं है जिसे भंग करना आवश्यक हो।" इसी तरह "स्फटिक शिला" कविता की व्याख्या करते समय जहाँ वे निराला द्वारा "एक सद्य स्नाता युवती का चित्रण" बताते हैं वहीं यह भी कहते हैं कि "रवीन्द्रनाथ की विजयिनी यहाँ फिर अवतरित हो गयी है" (वही - पृ0 227) मगर इस वस्तुगत काव्यवस्तु को कुछ ही पंक्तियों के बाद वे आत्मगत स्वरुप दे देते हैं, "स्वयं कवि उसके सौंदर्य का प्रत्यक्षदर्शी है।" फिर निराला के "मन" पर आ जाते हैं और कहते हैं, "मोह और मोहभंग के बीच निराला का मन कैसे झूलता था, यह कविता उसका प्रमाण है।" (वही पृ0 228) दरअसल, वे निराला की सारी कविताओं (और कई कथा कृतियों को भी) निराला के निजी जीवन और "उनके मन" के ही किसी न किसी अंश का "प्रमाण" बताते चलते हैं। राम की शक्ति पूजा" जैसी नाटकीय कविता को भी डॉ. रामविलास शर्मा निराला के "मन" से जोड़ देते हैं। उन्होंने लिखा:

> "राम की शक्तिपूजा" लिखते समय **निराला का मन** एक ओर पराजय, ग्लानि के बीच विपर्यस्त लटों वाले राम को देख रहा था, दूसरी ओर अब तक जो पढ़ा-गुना था, उसे समेटकर - उसका सारतत्व ले कर - काव्यचित्रों को सजा रहा था।" ... (वही, पृ0 529)

इसी तरह "अनामिका" की एक कविता की व्याख्या करते हुए डॉ. रामविलास शर्मा निराला के जीवन को बीच में ले आते हैं। कविता में "सूखी भूमि, सूखे तरु, सूखे सिक्त आलवाल" जैसे बिंब किसी सार्वजनिक और सामाजिक स्थिति का बोध कराते हैं, मगर डॉ शर्मा कहते हैं, "इस साहित्यिक संघर्ष का केंद्र निराला स्वयं थे, ..."जला है जीवन यह" - निराला का जीवन जला है। ...निराला के मन की

आशाएं, विषाद, उल्लास, निराशा, वीरतापूर्ण कर्म, त्रास, दु:स्वप्न - यह सब कुछ कहीं-न-कहीं हिंदी के इस आंतरिक संघर्ष से जुड़ा हुआ है।'' (वही, पृ0172)

साहित्य समीक्षा की यह जीवनीपरक या मनोविश्लेषणवादी पद्धति दुनियाभर में खारिज की जा चुकी है क्योंकि इसमें काफी मनमानापन बरते जाने की गुंजाइश रहती है जबकि रचनाकार के ''मन'' का या ''जीवन'' का जटिलताभरा स्वरुप उसके जीवन काल में भी जानना आसान नहीं होता, मृत्यु के बाद सिर्फ काव्यभाषा से उसे विश्लेषित करना तो और भी अप्रामाणिक होगा क्योंकि काव्यभाषा तो बहुलार्थक होती है। काव्यभाषा के इस गुण के बारे में भारतीय काव्यशास्त्र में भी और पश्चिमी साहित्यालोचन के सिद्धांतों में भी काफी कुछ कहा गया है। काव्यभाषा के इस वस्तुगत अस्तित्व को अनदेखा करके निराला के आलोचकों ने उनकी कविताओं के बजाय उनके जीवन पर ज्यादा ध्यान दिया है। निराला पर एक और किताब का जिक्र अक्सर आता है, यह है दूधनाथ सिंह द्वारा लिखी किताब, ''निराला : आत्महंता आस्था''। इस किताब में भी, जैसा कि शीर्षक से ही ध्वनित है, निराला के ''आत्म'' या ''निजत्व'' पर ज्यादा ज़ोर है। हालांकि डॉ. रामविलास शर्मा के मुकाबले दूधनाथ सिंह की आलोचना में निराला की रचनाओं की रचनाप्रक्रिया का काफी कुछ वस्तुगत विश्लेषण है, फिर भी ''मैं शैली'' अपनाने वाले निराला की कविताओं से वे भी उनके निजी जीवन को ही जानने-समझने और पारिभाषित करने की कोशिश करते हैं। डा. शर्मा की तरह वे भी लिखते हैं : "उनका (निराला का) सारा जीवन सांसारिक दृष्टि से असफल, अव्यवस्थित, विश्रृंखल, अतिशय अव्यावहारिक और दुखद रहा है। आर्थिक विपन्नता इसमें प्रमुख रही है। इस सांसारिक दुखद नियति के आगे हार-जीत की द्वंद्वपूर्ण मन:स्थिति और उसका अंतस्ताप ही निराला की रचनात्मकता की मुख्य दिशा बन गयी है। (पृ014) यह देख कर हैरानी होती है कि ''बादल राग'' जैसी निर्वैयक्तिक और नाटकीय रचना को भी दूधनाथ सिंह निराला की ''आत्मा'' से या ''निजी जीवन'' से जोड़ देते हैं। वे लिखते हैं : "निराला ऋतु के माध्यम से अपने जीवन-बिंब को ही बार-बार अवतरित करते हैं, उसे पाते हैं और उसे खो देते हैं।'' (वही, पृ0237) इस तरह की आलोचना में एक अंतर्विरोध भी है, क्योंकि ये आलोचक जब कविताओं का विश्लेषण या ''पाठ'' करते हैं तो उनका आलोचनात्मक विमर्श अक्सर ''निजी जीवन'' या ''आत्मचरित'' से दूर चला जाता है। यह स्थिति डॉ. रामविलास शर्मा और दूधनाथ सिंह दोनों की ही आलोचना पद्धति में देखी जा सकती है।

साहित्य अकादमी ने 1985 में निराला पर एक पुस्तिका (मोनोग्राफ) प्रकाशित की थी जिसके लेखक हैं: परमानंद श्रीवास्तव। इस पुस्तिका में परमानंद श्रीवास्तव ने भी डा. रामविलास शर्मा की आलोचना पद्धति का अनुसरण किया और कवि के व्यक्तिगत जीवन को ही कविता के भीतर ज्यादा देखा। ''राम की शक्ति पूजा'' जैसी नाटकीय कविता में डॉ. शर्मा की तरह श्रीवास्तव जी भी निराला का निजी जीवन ढूंढ रहे हैं। वे लिखते है : "अन्याय जिधर है, उधर शक्ति'' कह कर निराला अपने ही जीवन के दुर्भाग्य की विडंबना प्रकट कर रहे थे।'' (पृ018) इसी तरह वे निराला की ''मैं शैली'' को ''आत्मसाक्षात्कार'' या ''आत्मसंघर्ष'' के हवाले करके आलोचना की इतिश्री करते हैं : "निराला के काव्य संसार में आत्मसंघर्ष और आत्मसाक्षात्कार के अनुभव चित्र अनेक हैं और उनके आधार पर देखा जा सकता है कि निराला का ''मैं'' लगातार शेष संसार की वास्तविकता से टकराता है।'' (वही,पृ029) यह बात श्रीवास्तव जी ने निराला के गीतों के बारे में भी कही है, वे लिखते हैं : "आत्म-साक्षात्कार या आत्मसंघर्ष के अनुभव निराला के गीतों में बिखरे पड़े हैं। आत्मसाक्षात्कार एक तरह से निराला के गीतों के केंद्र में है।'' (वही,पृ038) चलो, गीतों के बारे में यह बात मान भी ली जाये (हालांकि गीत भी रचे जाने के बाद ''आत्म'' से दूर हो जाते है), मगर अपनी पूरी नाटकीयता के साथ लिखी गयी लंबी कविताओं के बारे में भी श्रीवास्तव जी अन्य हिंदी आलोचकों की ही तरह ''निराला के जीवन संघर्ष'' का राग अलापते हैं : ''इनका महत्व इस लिए भी है कि इनके भीतर निराला के जीवन संघर्ष का मार्मिक साक्ष्य मिलता है (वही, पृ057) ।

इस तरह हम देखते हैं कि हिंदी आलोचना में अभी तक रचना को एक सापेक्षतया स्वायत्त इकाई मानने और उसका विश्लेषण करने या उसमें निहित विचार सरणि को परिभाषित करने की पद्धति विकसित नहीं हुई है। जहाँ आलोचकों ने उनकी अलग-अलग कविताओं की कलात्मकता की चर्चा की है वहाँ रुपवादी आलोचना पद्धतियों से निराला की शब्दशक्ति, अलंकार प्रयोग, प्रतीकात्मकता, बिंबात्मकता आदि के बारे में वक्तव्य दिये हैं। यह बयानबाजी भी उसी नज़रिये से की गयी है जिसमें ध्यान रचनाकार के व्यक्तित्व को महानतम सिद्ध करने पर रहता है। इस काम के लिए हिंदी आलोचना एक और नुस्खा अपनाये हुए है जिसका ज़िक्र करना भी यहाँ ज़रुरी है। यह नुस्खा है किसी दूसरे कवि से

अपने इष्ट कवि की तुलना करना और दूसरे को हेठा या छोटा दिखा कर अपने इष्ट कवि-व्यक्तित्व को ऊंचा सिद्ध करना। निराला पर लिखी हिंदी आलोचना में भी यह प्रवृत्ति खूब मिलती है।

डॉ. रामविलास शर्मा की पुस्तक ''निराला की साहित्य साधना'' के द्वितीय खंड को देखें तो हर अध्याय में इस तुलनात्मक प्रवृत्ति की मिसाल मिल जायेगी। इस किताब की शुरुआत ही वे अंग्रेज़ी कवि मिल्टन और तमिल कवि सुब्रह्मण्यम भारती से करते हैं। फिर जगह-जगह हिंदी के अन्य लेखकों को हेठा सिद्ध करते चलते हैं। मसलन, निराला की एक टिप्पणी पर अपनी राय प्रकट करते हुए डॉ. शर्मा यह जोड़ देते हैं कि ''निराला सन् 32 में यह टिप्पणी लिखते हुए जहाँ पहुंचे थे, वहाँ उस समय के नये और पुराने लेखकों को पहुंचने में अभी देर थी'' (पृ0114) निराला की भाषा की शक्ति की प्रशंसा करते समय वह बाकी सारे कवियों पर टिप्पणी करते हैं कि "वे निराला से बड़े कवि नहीं, उनकी भाषा में वह शक्ति नहीं जो निराला की भाषा में है।'' (पृ0408) निराला के छंदों की स्वच्छंद लय के विकास के बारे में लिखते समय टिप्पणी की, ''हिंदी में उसका जैसा विकास निराला में हुआ है, वैसा अन्य कवि में नहीं... "(पृ0444) इसी तरह निराला को महान घोषित करने के लिए उनकी एक उक्ति की तुलना लौन्जाइनस की उक्ति से कर दी (पृ0495), एक जगह लिखा, निराला ने शेक्सपीयर के सानेट का सारतत्व खींचकर एक पंक्ति लिखी - "खिंच गये दृगों में सीता के राममय नयन।'' (पृ0530), कृत्तिवासीय रामायण के राम की तुलना ''राम की शक्तिपूजा'' के राम से करते हुए डॉ. रामविलास शर्मा ने लिखा, ''राम के आंसू असाधारण हैं। उन्हें देखकर शक्ति के अक्षय स्रोत चंचल हो उठते हैं, ''ये अश्रु राम के'' आते ही मन में विचार/ उद्वेल हो उठा शक्ति खेल सागर अपार''। शक्ति सागर का यह उद्वेल इसीलिए संभव है कि निराला की आंखों में आंसू आसानी से नहीं आते। ऐसा भाव-संयम, उनके भंग होने पर करुणा की ऐसी अपूर्व अभिव्यक्ति केवल शेक्सपीयर में है।'' (पृ0533) तुलना करने की यह प्रवृत्ति डॉ. रामविलास शर्मा की आलोचना में उसी तरह व्याप्त है जैसे कवियों के ''मन'' या ''व्यक्तित्व'' का विश्लेषण करने की अनाधिकार कोशिश। ''अभिप्राय'' नामक हिंदी पत्रिका के अंक 20 (जनवरी-मार्च 1998) में दिये गये एक इंटरव्यू में प्रश्नकर्ता भी निराला और मुक्तिबोध का तुलनात्मक आकलन डॉ. शर्मा के मुंह से सुनना चाहता है और डॉ. शर्मा (जो अन्य हिंदी आलोचकों की तरह इस काम में सिद्धहस्त हैं) फौरन तुलना कर डालते हैं और कहते हैं : ''...मुक्तिबोध किसान आंदोलन से कटे हुए थे। उनकी कृति ''अंधेरे में'' असामान्य मनोदशा की रचना है। ...इसके विपरीत निराला अपने समय में सामाजिक सरोकारों से सर्वाधिक रूप से कवियों में प्रथम ठहरते हैं। मुक्तिबोध कहीं भी निराला के समक्ष नहीं ठहरते - आज भी मेरा यह मानना है।'' (पृ047) इस इंटरव्यू में भी गौर से देखें तो ''मनोदशा'' और अपने इष्ट को महानतम सिद्ध करने की प्रवृत्ति मौजूद है।

अन्य कवियों को नीचा सिद्ध करने की प्रवृत्ति हिंदी आलोचना में खूब मिलती है और अभी इससे मुक्ति नहीं। निराला पर लिखने वाले अन्य लेखक भी इस तरह की तुलनात्मक टिप्पणी करते हैं। दूधनाथ सिंह ने भी अपनी पुस्तक, ''निराला : आत्महंता आस्था'' में निराला की प्रेम कविताओं को व्याख्यायित करते समय कबीर, जायसी और रवींद्रनाथ ठाकुर से उनकी तुलना की है और यह दर्शाया है मानों ये रचनाकार निराला के मुकाबले कमज़ोर थे। (देखें पृ0 33-34) परमानंद श्रीवास्तव ने भी इसी तरह लिखा : "पूरे छायावाद युग में और संभवत: छायावादोत्तर युग में भी निराला जैसी प्रतिभा का दूसरा रचनात्मक लेखक नहीं है। निराला हर तरह से हिंदी की जातीय रचनात्मक परम्परा के अद्वितीय लेखक हैं।' (पृ0 21)

6.3 निराला के काव्य का वैचारिक आधार

हिंदी आलोचना की उक्त दो सीमाओं का उल्लेख यहाँ करना इसलिए ज़रुरी था क्योंकि अब समय आ गया है कि 21वीं सदी में हम बेहतर आलोचना ज्ञान से अपने साहित्य को समृद्ध करें। इसीलिए इस पाठ का शीर्षक भी यह ध्वनित करता है कि हम ''काव्य का वैचारिक आधार'' विश्लेषित करें, निराला की घोषित विचारधारा या उनके व्यक्तित्व और जीवन की सुनी सुनायी बातों पर भरोसा न करें। ऐसी समीक्षा से ही काफी कुछ वस्तुगत आकलन संभव होगा। रचना में निहित विचारधारा रचना की भाषा से हासिल की जाती है, कवि या लेखक अपनी विचारधारा का जो उद्घोष करता है, ज़रुरी नहीं कि वही विचारधारा उसके द्वारा निर्मित काव्यनायकों की भी हो क्योंकि किसी रचना का वाचक या नायक ''मैं'' शैली के बावजूद कवि खुद नहीं रह जाता। इसी वजह से कवि की एक रचना का वैचारिक आधार, हो सकता है, किसी अन्य कविता के वैचारिक आधार से बिल्कुल भिन्न हो। इस स्थिति को आलोचक

अपनी नासमझी में कवि के अंर्तविरोध कह कर छुट्टी कर देते हैं। दरअसल, यह गुत्थी इस सत्य को जानने से ही सुलझती है कि हर रचना सापेक्षतया एक स्वायत्त इकाई है, उसका अपना एक वाचक है, उस रचना की सापेक्षता अपने देश और काल के बीच है, वह वाचक और रचना एक काव्यभाषा द्वारा निर्मित होते हैं, भाषा समाज के बीच की होती है, इसीलिए समाज सापेक्ष होती है, और एक से अधिक अर्थ वाली यानी बहुलार्थक होती है। इसीलिए आलोचक रचनाओं का अपना-अपना भाष्य प्रस्तुत करते हैं। इन भाष्यों या ''पाठों'' में से एक पाठ खुद रचनाकार का भी हो सकता है, लेकिन अन्य ''पाठ'' भी खारिज नहीं किये जा सकते क्योंकि भाषा की यह अपनी प्रकृति है।

भाषा की इस प्रकृति की पहचान भारतीय काव्यशास्त्र में तो हुई ही थी, पश्चिम में स्विस भाषा वैज्ञानिक फर्डिनांड डि सौस्यूर (1857-1913) के भाषा संबंधी चिंतन ने इसे और अधिक पुष्ट किया। उनके ज्ञान से रुपवादी आलोचना ने तो बहुत फायदा उठाया, लेकिन वैज्ञानिक चिंतन में रुचि रखने वाले वस्तुवादी आलोचकों, खासकर मार्क्सवादी आलोचकों ने भी अपनी आलोचना पद्धति को पुष्ट किया। फ्रांस में रोला बार्थ ने भाषा की बहुलार्थक प्रकृति को मार्क्सवादी नजरिये से समृद्ध किया। उन्होंने ''व्यक्तित्व'' की अवधारणा (जिसे सार्त्र के अस्तित्ववाद ने सूत्रबद्ध किया था) को विखंडित कर दिया और कहा कि किसी भी मनुष्य का एक ''व्यक्तित्व'' नहीं होता, बहुत से व्यक्तित्व होते हैं। इसीलिए रोलां बार्थ ने उस प्राध्यापकीय आलोचना को विखंडित किया जो रचनाकार के जीवनचरित या ''व्यक्तित्व'' या ''मन'' को विश्लेषित करती थी और उस आलोचना को भी जो रचना को देश-काल निरपेक्ष मान कर सार्वभौमिक (यानी सभी देशों और सभी युगों से ऊपर या उस समाज के वर्गीय यथार्थ से ऊपर) सत्य या मूल्य घोषित करती थी।

निराला जिस समाज और समय में रचनाकर्म कर रहे थे, उस समय तक हिंदी भाषा का जो विकास हो पाया था, उसे और आगे तक जे जाने के उद्देश्य से भाषा के बारे में भी उन्होंने काफी चिंतन किया था। उनकी कुछ मान्यताएं आश्चर्यजनक रुप से रोलां बार्थ की मान्यताओं से मिलती हैं जबकि रोलां बार्थ का सैद्धांतिक लेखन छठे दशक के शुरु में प्रकाश में आया था, वह भी फ्रेंच भाषा में। भाषा की बहुलार्थक प्रकृति के बारे में उन्होंने संस्कृत वांड्.मय की उक्ति'', ''एक सद्विप्रा बहुधा वदंति'' का सहारा ले कर लिखा, सैद्धांतिक बहस में ज्यादा न उलझ कर उन्होंने तुलसीदास, गालिब, मीर, नज़ीर अकबराबादी की रचनाओं का अपना भाष्य या ''पाठ'' भी प्रस्तुत किया। हलके-फुलके तरीके ही से सही, उन्होंने दुलारेलाल भार्गव के एक दोहे के छ: अर्थ यानी आज की भाषा में ''पाठ'' प्रस्तुत किये। अंत में यह भी लिखा : ''इस दोहे के यहाँ छ: अर्थ मैंने किये हैं, और भी अनेक होते हैं। अभी यहाँ इतने ही दिये, विचारशील पाठक अर्थों की सार्थकता देखें।'' (निराला ग्रंथावली, सं. ओंकार शरद, भाग-1, पृ0562)

यहाँ निराला ने यह संकेत भी दे दिया कि ज़रुरी नहीं सारे अर्थ ठीक ही लगें, पाठक खुद , उसका निर्णय करें यानी पाठक के लिए एक अन्य अर्थ की संभावना को उन्होंने खुला रखा। इस खुलेपन में पाठक की अपनी रचनात्मकता की गुंजाइश बनी रहती है। यह समझ, हो सकता है, उन्हें तुलसी साहित्य की बहुसार्थकता या ग़ालिब की रचनाओं की बहुलार्थकता से हासिल हुई हो जिसके प्रमाण उनके निबंधों में मिलते हैं।

भाषा की बहुलार्थक प्रकृति की ही तरह निराला का एक और विचार रोलां बार्थ से मिलता जुलता है। रोलां बार्थ रचनात्मक भाषा को सरल, तर्कसंगत और समझ में सीधे-सीधे आ जाने वाली भाषा के रुप में देखने के पक्ष में नहीं था। वह इस तरह की भाषा की मांग को फ्रांस के पूंजीपतिवर्ग के स्वार्थ से जुड़ी हुई मांग मानता था क्योंकि पूंजीपतियों को इस तरह की भाषा में अपने अख़बार और अन्य संचार माध्यमों को संचालित करना होता था। प्रतिरोध की भावना से युक्त भाषा सरल नहीं होनी चाहिए, बल्कि रोलां बार्थ तो क्लिष्ट और विसंगतिपूर्ण भाषा की रचना को पूंजीवाद के खिलाफ एक प्रतिरोध का ही रुप मानता था। निराला भी ''साहित्य और भाषा'' शीर्षक निबंध में ''सरल'' सरल की गुहार का विरोध करते हैं। वे लिखते हैं: "हिंदी की सरलता के संबंध में बकवास करने वाले लोगों में अधिकांश को मैंने देखा - लिखते बहुत हैं, जानते बहुत थोड़ा हैं।'' (निराला ग्रंथावली-1, सं.ओंकार शरद, पृ0 62) आगे उन्होंने लिखा कि जिन बड़े-बड़े साहित्यिकों से समाज का वास्तव में कल्याण हुआ है, ''उन प्राचीन बड़े-बड़े साहित्यिकों की भाषा कभी जनता की भाषा नहीं रही। सोलह आने में.चार आने जनता के लायक रहना साहित्य का ही स्वभाव है।'' (वही, पृ0463)

निराला हो या रोलां बार्थ या कोई अन्य चिंतक, उनके विचार किसी न किसी सामाजिक हलचल या गति से अस्तित्व में आते हैं, व्यक्ति, खासकर प्रतिभाशाली और संवेदनशील व्यक्ति, अपने चिंतन के माध्यम से उन विचारों को रुप प्रदान कर देता है। इसी तरह किसी रचना का भी अपना वैचारिक आधार उसके समाज और काल में ही निहित होता है। निराला के काव्य का वैचारिक आधार जानने के लिए ज़रुरी है उनके समय के समाज के यथार्थ को वैज्ञानिक चिंतन के आधार पर समझना। समाज के विकास के वैज्ञानिक नियमों के अनुसार किसी भी समाज के यथार्थ को समझने के लिए ज़रुरी है, उस समय में समाज में विभिन्न वर्गों की स्थिति और भूमिका को समझना। निराला का काव्य उनके विकासकाल में स्वाधीनता आंदोलन के दौरान लिखा गया और परवर्ती साहित्य स्वाधीनता के बाद। भारतीय समाज की एक बनावट स्वाधीनता आंदोलन के दौरान थी, उससे भिन्न एक नयी बनावट आज़ादी हासिल कर लेने के बाद सामने आयी। इन दोनों चरणों के वर्गीय ढांचे को समझे बगैर उस दौर के रचनात्मक साहित्य के वैचारिक आधार को समझ पाना मुश्किल होगा।

स्वाधीनता आंदोलन के दौर में हमारे देश पर ब्रिटिश साम्राज्यवाद का शासन था, देश के बाकी अन्य वर्ग गुलाम थे। देश के सामंतवर्ग को शासकों ने अपने साथ मिला लिया था, शेष वर्गों में आते थे, देश के नवोदित पूंजीपति, मध्यवर्ग के लोग, किसान और मज़दूर। इन वर्गों में से पूंजीपतिवर्ग को अपने विकास के लिए भारत को एकताबद्ध करना और अपने लिए यहाँ के बाज़ार को मुक्त कराना सबसे ज्यादा ज़रुरी था, इसी उद्देश्य से उसने उन्नीसवीं सदी में ही भारतेंदु के माध्यम से यह अहसास करवाया कि "...धन विदेस चलि जात यहै दुःख भारी।" पूंजीपतिवर्ग ने ही "राष्ट्रीयता" यानी "भारत" का बोध प्रचारित किया। इसीलिए रीतिकाल के दोहों में व्यक्त "मेरी भवबाधा" की जगह उन्नीसवीं सदी के अंत में "भारतदुर्दशा" का बोध सामने आया। उसके बाद "भारत भारती" आदि में भी इसी भारत की कल्पना और उसकी मुक्ति का अहसास कराया गया। इसी दौर में नारा आया, "स्वाधीनता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है।" इस नारे के पीछे भी प्रेरक शक्ति देशी पूंजीपतिवर्ग ही था जिसे अपने लिएं भारत का बाज़ार विदेशी पूंजीपतियों से मुक्त कराना था। चूंकि देश के अन्य शोषितवर्गों के हित भी स्वाधीनता से जुड़ गये थे, इसलिए इस आंदोलन में सबकी शिरकत होने लगी थी, वह एक साझा आंदोलन बनने लगा था। इसलिए इस दौर की रचनाओं का आधारभूत वैचारिक आधार मुक्ति का दर्शन था, निराला के काव्य का भी वैचारिक आधार मुक्ति का ही दर्शन था। जिस तरह फ्रांस की 1789 की क्रांति का उद्देश्य पूंजीवाद द्वारा सामंतवाद का खात्मा करके राजसत्ता हथियाना था जिसके लिए तीन नारे दिये गये थे, "स्वतंत्रता, समता, बंधुत्व", उसी तरह हमारे यहाँ भी पहले "स्वराज", "स्वदेशी" का नारा दिया गया और फिर "बंधुत्व" भाईचारे का। "समता" के नारे को ज्यादा प्रचारित नहीं किया गया। फ्रांस की क्रांति के नारों ने पूरे यूरोप के साहित्य में रोमांटिक साहित्य को जन्म दिया, उसी तरह हमारे यहाँ "स्वतंत्रता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है" के नारे ने सभी भारतीय भाषाओं के साहित्य में रोमांटिक साहित्य आंदोलन को पैदा कर दिया। "मुक्ति" एक नये मानव मूल्य की तरह चेतना का हिस्सा बनने लगी, हर स्तर पर पराधीनता के खिलाफ चेतना प्रस्फुटित होने लगी। इसी भावना को "राष्ट्रवाद", "राष्ट्र प्रेम" (जिसका सारतत्व भारतीय बाज़ार को देशी पूंजीपतियों के लिए मुक्त कराना था) के नाम से प्रचारित किया गया। चूंकि इन नये मानव मूल्यों से हमारा समाज विकास की नयी मंजिल में प्रवेश कर सकता था, इसीलिए ये सारे मूल्य प्रगतिशील मूल्य थे। सामाजिक विकास की नयी मंजिल हासिल करने के लिए देश के लाखों लोगों ने जानें कुर्बान कर दीं। मुक्ति का यह अहसास बहुत बड़ी शक्ति छिपाये हुए था, इसमें बड़ी ऊर्जा थी, इसी ऊर्जा से निराला का साहित्य भी दीप्त हो रहा था। उनके रचनात्मक साहित्य का वैचारिक आधार यही मुक्ति का दर्शन था। मुक्ति के विचार से संगति बिठाने वाले हर दार्शनिक चिंतन को वे आत्मसात करने और उसे नया अर्थ देने की कोशिश में लग जाते थे। इसी प्रक्रिया में भारतीय नवजागरण के सभी बौद्धिक स्रोतों पर निराला ने देर सवेर निगाह डाली। अन्य रचनाकारों की तरह उन्होंने भी अतीत को गौरवान्वित करके, भारतीय चेतना में रचे-बसे मिथकों को इस्तेमाल करके पराधीनता की नींद से सोये हुए देश के जन गण को जगाने की रचनात्मक कोशिश की। "जागो फिर एक बार" जैसी रचना की व्याख्या भारतीय नवजागरण की प्रक्रिया को समझे बगैर ठीक से नहीं हो सकती। इसलिए "जागो फिर एक बार" कविता का वैचारिक आधार भारतीय नवजागरण की वे तमाम दार्शनिक प्रणालियाँ हैं, जो अपने आंतरिक अंतर्विरोधों के साथ भी हर भारतीय को अतीत की महानता का बोध कराती थीं, पराधीनता से मुक्त होने के लिए उत्प्रेरित करती थीं।

6.3.1 मुक्ति का दर्शन/चिंतन

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, निराला की कविताओं का वैचारिक आधार, अन्य छायावादी कवियों के वैचारिक आधार की ही तरह, मुक्ति का चिंतन था। दरअसल, मुक्ति के इस चिंतन की प्रक्रिया में

कोई एक बंधीबंधायी दार्शनिक प्रणाली इस दौर के किसी भी कवि को आकर्षित नहीं कर पा रही थी। मुक्ति संग्राम में भी कोशिश यह हो रही थी कि अतीत की ही कोई दार्शनिक प्रणाली हाथ लग जाये तो उसी के सहारे आज़ादी की लड़ाई लड़ी जाये। ऐसा इसलिए हो रहा था क्योंकि हमारे समाज का विकास एक खास मंजिल तक ही पहुंच पाया था और इस नये विकास में दो नये वर्ग ही ऐतिहासिक रुप से अपनी भूमिका निभा सकते थे, इनमें से एक वर्ग नवोदित पूंजीपतिवर्ग और दूसरा उनके अधीन काम करने वाले मजदूरों का वर्ग था। भारत का नवोदित पूंजीपति वर्ग भूस्वामियों समेत सभी अन्य वर्गों को ब्रिटिश साम्राज्यवाद के खिलाफ अपने पक्ष में एकताबद्ध करना चाहता था, प्रथम विश्वयुद्ध में भारी मुनाफे कमा कर यहाँ का पूंजीपति इतना शक्तिशाली हो चुका था कि वह स्वाधीनता आंदोलन का राजनीतिक नेतृत्व अपने हाथ में ले सके। उसने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस को राजनीतिक पार्टी के रुप में इस नेतृत्व का मंच या माध्यम तैयार किया। चीन जैसे देश में पूंजीवाद अपने दलाल चरित्र से ऊपर उठ कर सशक्त नहीं बन पाया था, इसलिए वहाँ के मुक्ति आंदोलन की जिम्मेदारी मजदूर वर्ग की पार्टी यानी कम्युनिस्ट पार्टी पर आ गयी थी। हमारे यहाँ मज़दूर वर्ग ने अपनी राजनीतिक पहलकदमी और अपनी पार्टी का गठन आदि का काम देर से शुरु किया, तब तक पूंजीपतियों की पार्टी और राजनीति ने भारत के अवाम की चेतना में पैठ कर ली थी और देशभक्ति और राष्ट्रवाद की लहर पूरे उपमहाद्वीप में फैला दी थी।

पूंजीपतिवर्ग ने हमारे यहाँ सामंतवाद के खात्मे को कभी अपने एजेंडे में शामिल नहीं किया जैसा कि पश्चिम के देशों में हुआ था। इसी वजह से हमारे यहाँ अतीत की विचारधाराओं का सहारा लेकर मुक्ति संग्राम लड़ने की कोशिशें हुई। अतीत का गौरवगान और सामंती अतीत के नायकों की शौर्यगाथा इसी जटिलता की सूचक थी। ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने इस अतीत प्रेम को सांप्रदायिक रंगत दे कर हिंदू-मुसलमान के बीच खाई पैदा करने में योगदान दिया, अतीत प्रेमी सामंती तत्वों ने हिंदू महासभा और आर.एस.एस. जैसे संगठन खड़े किये जिनसे ब्रिटिश हुकूमत को काफी मदद मिली क्योंकि भारतीय जनता की एकता तोड़ने में ये संगठन मददगार साबित हो रहे थे। इन संगठनों से आतंकित होकर मुसलमानों के भीतर के सामंती जेहनियत वाले अतीतगामियों ने "मुस्लिम लीग" बना कर वही भूमिका अदा की जो हिंदू महासभा और आर.एस.एस. के संगठन कर रहे थे। इस तरह दोनों तरह के सांप्रदायिक तत्व ब्रिटिश साम्राज्यवाद के लिए मददगार साबित हो रहे थे क्योंकि उनकी नीति ही थी, "फूट डालो और राज करो"। अतीतप्रेम की इस जटिल परिस्थिति का वैचारिक असर बुद्धिजीवियों पर भी पड़ रहा था। भारतेंदु हरिश्चंद्र से ले कर आज तक ऐसे बहुत से कवि जो अतीतप्रेम से आलिप्त हो जाते हैं, मुख्यतया हिंदू सामंतों के समय की विचारधाराओं को ही "भारतीय मनीषा" कह कर महिमामंडित करते हैं, अन्य कलाओं और सांस्कृतिक सवालों में भी हिंदुओं से इतर समुदायों के मनीषियों, कलाकारों आदि को गिनती में नहीं लाते। सांप्रदायिकता का यह ज़हर काफी गहरे आज तक हमारे समाज की चिंतनप्रणाली में समाया हुआ है।

निराला की कविताओं में भी भारतीय नवजागरण की विचार प्रणालियों के अंतर्विरोध हैं, इसलिए उनकी सारी कविताओं का एक ही वैचारिक आधार नहीं है। "महाराज शिवाजी का पत्र" शीर्षक कविता का वही वैचारिक आधार नहीं है जो "बादल राग" का या फिर "राजे ने अपनी रखवाली की" जैसी कविताओं का है। हालांकि "स्वतंत्रता" के मूल्य को फलित देखने की चाह तीनों कविताओं के वाचकों को है जो कि इस दौर का आधारभूत मूल्य है, फिर भी "महाराज शिवाजी का पत्र" वस्तुगत रुप में (निराला के मन में चाहे जो कुछ रहा हो, वह यहाँ महत्वपूर्ण नहीं है और उस मंतव्य की तलाश विकसित काव्यालोचन का काम भी नहीं है) अतीत के उस सांप्रदायिक वैचारिक आधार की कविता ही ठहरती है जिसका पोषण राजे महाराजे करते रहे, अंग्रेज़ शासक भी करते रहे और स्वाधीन भारत में भी शोषक-शासक वर्ग आज भी कर रहे है। "बादल राग" कृषक मुक्ति की विचारधारा की कविता है, "राजे ने अपनी रखवाली की" का वैचारिक आधार मज़दूर वर्ग की विचारधारा यानी मार्क्सवाद-लेनिनवाद है क्योंकि उसी विज्ञान के प्रकाश में यह सत्य उजागर होता है कि शोषण पर आधारित वर्गीय सामाजिक ढांचे में "राजे" यानी शासकवर्ग के हित साधन के लिए ही "सुपरस्ट्रक्चर" होता है, कवि, कलाकार, इतिहासकार आदि उसी "सुपरस्ट्रक्चर" के हिस्से होते हैं। आइए, इन तीनों कविताओं के वैचारिक आधार के अंतर को जानने के लिए इनका पाठात्मक विमर्श सामने रखें।

6.4 विभिन्न वैचारिक आधार वाली कविताएँ

पहले "महाराज शिवाजी का पत्र" कविता को लें। डा. रामविलास शर्मा ने इस कविता को निराला की

''वक्तृत्वकला'' के खाते में डाल कर छुट्टी कर ली क्योंकि इस कविता में ''निराला का मन'' या ''जीवन'' ढूंढने की कोई गुंजाइश नहीं थी। उन्होंने लिखा, ''महाराज शिवाजी का पत्र'' एक लंबी वक्तृता है। इसमें पत्र-लेखन-कला नहीं, भाषणकला है। कविता मानो लिखी इस उद्देश्य से गयी है..." (निराला की साहित्य साधना, खंड-2, पृ0270) दूधनाथ सिंह ने भी कहा कि ''वाग्मिता इस कविता का सबसे बड़ा गुण है, जिसे अंग्रेज़ी में ''इलोक्वेंस'' (Eloquence) कहते हैं।'' (निराला : आत्महंता आस्था पृ0100) मगर दूधनाथ सिंह ने इस कविता के संदर्भ में उसकी अंतर्वस्तु को, डा. शर्मा की तरह, अनदेखा नहीं किया। उन्हें लगा कि यह कविता ''सांस्कृतिक क्षय'' की चिंता को मुखरित करती है। लेकिन ''व्यक्तित्व'' पर ही निगाह टिकाने की हिंदी आलोचना की आदत की वजह से उन्होंने यह लिखा : "जिस तरह वे'' एक ओर हिंदू एक ओर मुसलमान हो'' की बात करते हैं, व्यक्ति के जातिगत खिंचाव की वकालत करते हैं - आज के धर्मनिरपेक्ष हिंदुस्तान में यह शब्दावली बड़ी अटपटी लगती है। इस तरह की शब्दावली से निराला के कुल व्यक्तित्व पर ही कभी-कभी शंका होने लगती है'' (वही, पृ010)

दरअसल, यह कविता इस बात का प्रमाण है कि कवि की घोषित विचारधारा और कविता में प्रतिफलित विचारधारा को एक मान लेना एकदम अवैज्ञानिक है, इसी तरह कवि के निजी जीवन को और कविता में चित्रित जीवन को एक समझ बैठना आलोचना की सबसे बड़ी भूल है, और इस भूल से हिंदी आलोचना अभी तक मुक्त नहीं हो पा रही। ''महाराज शिवाजी का पत्र'' एक नाटकीय एकालाप है जिसका वाचक शिवाजी है। शिवाजी का एक शत्रु है जिसे वह इसलिए परास्त नहीं कर पा रहा क्योंकि शक्ति संतुलन शत्रु के पक्ष में है। इसलिए वाचक शत्रु के खेमे से ''जयसिंह'' को तोड़कर जातीय एकता के आधार पर नया शक्तिसंतुलन पैदा करना चाहता है। शत्रु पर विजय के लिए यह एक कारगर रणनीति है। कविता का अपना वस्तुगत आधार इसलिए गड़बड़ा जाता है क्योंकि कवि ने इतिहास से जो प्रतीक चुना उसका टकराव ''मोगल दल'' से था, ऐसे चुनाव के कारण कविता की स्वायत्त सत्ता में उसकी रंगत सांप्रदायिक हो गयी क्योंकि तब नया शक्ति संतुलन कविता ने ''हिंदू'' बनाम ''मुसलमान'' बना दिया :

फैले समवेदना
एक ओर हिंदू एक ओर मुसलमान हों
व्यक्ति का खिंचाव यदि जातिगत हो जाय
देखो परिणाम फिर,
स्थिर रहेंगे न पैर यवनों के
पस्त हौसला होगा -
ध्वस्त होगा साम्राज्य

हालांकि ''महाराज शिवाजी का पत्र'' कविता में उक्त पंक्तियों के बाद ही वाचक ''दासता के पाश कट जायेंगे'' के माध्यम से स्वाधीनता आंदोलन की विचारधारा को व्यक्त करने की कोशिश करता है, मगर कविता में खेमों का जो ध्रुवीकरण हो गया है, उससे इस कविता का वैचारिक आधार सांप्रदायिक विचारधारा का हो गया है जो कि भारत के स्वाधीनता आंदोलन और भावी विकास के लिए काफी खतरनाक विचारधारा थी और आज भी है। इतना ही नहीं, कविता का अंत उस वर्णाश्रम संहिता की विचारधारा से परिचालित हो गया है जो मनुष्य और मनुष्य के बीच असमानता के दर्शन पर टिकी हुई है और इसलिए लोकतांत्रिक विचारभूमि के प्रतिकूल तो वह है ही, हमारे यहाँ के भक्ति-साहित्य के रचनाकारों, सूफी-संतों तक की विचारधारा के खिलाफ जाती है :

चमकेंगे खड्ग सब
विद्युद्द्युति बार-बार,
खून की पियेंगी धार
संगिनी सहेलियां भवानी की,
धन्य हूंगा, देव-द्विज-देश को

सौंप सर्वस्व निज

निराला के ''देव, द्विज'' के बारे में और मुसलमानों के बारे में घोषित विचार इस कविता में निहित या प्रतिफलित विचारों से बिल्कुल उलट हैं। उनमें न तो ''देव, द्विज'' को ऐसा गौरव प्रदान किया गया है और मुसलमानों को तो कहीं भी शायद इस तरह नफरत का निशाना नहीं बनाया गया है। डॉ.

रामविलास शर्मा ने अपनी पुस्तक के "विचारधारा" खंड में "राष्ट्रीय एकता और मुसलमान" शीर्षक अध्याय में जो उद्धरण दिये हैं उनसे यह स्पष्ट होता है कि निराला के घोषित विचार कतई सांप्रदायिक नहीं थे, वे भारत में बसे सभी धर्मों के लोगों और जातीयताओं को भारतीय मानकर उनकी एकता के लिए समर्पित थे। इसी तरह "देव, द्विजों" को गौरवान्वित न करके वे मनुष्य और मनुष्य की बराबरी के पक्ष में थे। मगर उक्त कविता में से निकलने वाली विचारधारा उनके निजी विचारों से स्वतंत्र हो कर बिल्कुल उलट हो गयी। दूधनाथ सिंह को इसीलिए लिखना पड़ा कि "इस कविता की ओजस्विता और वाग्मिता की तारीफ करते हुए भी वस्तु के स्तर पर इसकी वकालत शायद उचित नहीं होगी।" (वही, पृ0102)

"बादल राग" में निराला की छह कविताएं हैं। ज्यादातर आलोचकों ने इन्हें अलग-अलग रंगत और अलग-अलग भावभूमि की कविताएं कहा है। निराला ने खुद भी अपनी एक व्याख्या या अपना "पाठ" प्रस्तुत किया है जिसमें एक ओर उन्होंने इसकी अर्थ-बहुलता का संकेत दिया है वहीं काव्यवस्तु के रुप में "बुराई के खिलाफ "बगावत" को रेखांकित किया है। इन्हें अलग-अलग रंगत और भावभूमि की कविताएं मानते हुए सभी आलोचकों ने इनके वैचारिक आधार को एक ही नहीं बताया। इसीलिए दूसरी ओर छठी कविता को ही ज्यादा महत्व दिया है। दूधनाथ सिंह ने लिखा, "बादल राग" की सभी कविताएं इस विप्लव की भूमिका में नहीं रखी गयी हैं। सबकी भावभूमि अलग-अलग है।" (निराला : आत्महंता आस्था, पृ0237) फिर आगे कहा, "बादल राग" क्रम की दूसरी तथा छठी ये दो कविताएं क्रांति की भूमिका से संबद्ध हैं (पृ0238) लगभग इसी तरह की बात डॉ. दिनेश्वर प्रसाद ने "बादल राग" पर लिखे अपने एक लेख में कही है और उन कविताओं का उन्होंने अपना "पाठ" भी इसी नज़रिये से कर डाला है। यह ज़रुर है कि उन्होंने पहली कविता को भी दूसरी और छठी कविता की संवेदना से संबंधित घोषित किया है, मगर तीसरी, चौथी, पांचवीं कविता को इस केंद्रीय संवेदना से काटकर सतही तौर पर व्याख्यायित कर डाला है और पांचवीं कविता में तो बादल को "परमात्मा के व्यक्त रुप का प्रतीक" ही बता दिया है। (निराला- आलोचकों की दृष्टि में, पृ091)

दरअसल, "बादल राग" शीर्षक छह कविताएं एक ही वैचारिक आधार की कविताएं हैं, बिंबों और टोन के आधार पर उन्हें अलग-अलग भावभूमि की रचनाएँ मानना सही नहीं लगता। कविताओं का वाचक दूसरी कविता में अंतिम पंक्ति में कहता है, "गरजो विप्लव नव जलधर"। इस "नव जलधर" को सामाजिक विकास के वैज्ञानिक ज्ञान के बिना सामान्यतया नहीं समझा जा सकता है। मैंने जैसा कि ऊपर कहा है कि भारत के स्वाधीनता संग्राम की ऐतिहासिक तौर पर जिम्मेदारी दो ही वर्ग जो कि नये वर्ग थे निभा सकते थे, एक तो नवोदित पूंजीपतिवर्ग जिसे इस उपमहाद्वीप का बाज़ार अपने लिए ब्रिटिश पूंजीपतियों के हाथ से मुक्त कराना था, दूसरे, सर्वहारा वर्ग भी यह जिम्मेदारी निभा सकता था जो कि उसी तरह से नया वर्ग था और जो ऐतिहासिक रुप से किसानों समेत अन्य सभी वर्गों को शोषण की विभीषिका से मुक्त करा सकता है। जिस दौर में यह कविता लिखी गयी थी, उस दौर में सोवियत क्रांति द्वारा इस नये सर्वहारा वर्ग ने यह सत्य साबित भी कर दिखाया था। निराला की कविता में यही वर्ग "नव जलधर" है। भारत में भी सर्वहारा वर्ग से उम्मीद की जा रही थी कि वही हमारे मुक्ति संग्राम का नायक बनेगा। पर कविता में यह सचाई भी प्रतिबिंबितत होती है कि वह अभी "शिशु" अवस्था में ही था, अपनी पार्टी यानी कम्युनिस्ट पार्टी भी गठित नहीं कर पाया था। चौथी कविता का "मुक्त शिशु" इसी नये वर्ग का ही बिंब है जिसे हिंदी आलोचक दूसरी और छठी कविता के भाव बोध से भिन्न मानते हैं। विश्वसाहित्य में मुक्ति की विचारधारा से अनुप्राणित होने वाले साहित्य में "शिशु" या "बालक" का बिंब या प्रतीक बार-बार आया है। फ्रांस की क्रांति ने जब मुक्ति (लिबर्टी) का संदेश यूरोप के समाज को दिया था, तब वहाँ भी कविता में "शिशु" का बिंब हर कवि की कविता में आया था क्योंकि "शिशु" किसी को गुलाम नहीं बनाता, स्वछंद कल्पना और निश्छलता का वह रूप होता है। इसी रूप में वह अंग्रेज़ी कवि विलियम ब्लेक की कविताओं में, वर्डस्वर्थ की कविताओं में और बाद में चार्ल्स डिकेन्स के उपन्यासों में आया था। हमारे यहाँ मुक्ति की नयी विचारधारा मार्क्सवाद के प्रभाव में मुक्तिबोध ने जो कविताएँ लिखीं उनके केन्द्र में भी "शिशु" का बिंब आया है। निराला की बादल राग (4) अंतिम पंक्तियाँ इसी वैचारिक प्रेरणा को वस्तुगत रूप में व्यक्त करती हैं :

बधिर विश्व के कानों में
भरते हो अपना राग,
मुक्त शिशु, पुन: पुन: एक ही राग अनुराग

इसी तरह ''बादल राग'' की तीसरी और पांचवी कविता भी मुक्ति के केंद्रीय संवेदन से जुड़ी हुई है। जहाँ तीसरी कविता बादल को एक त्यागी और कर्मरत क्रांतिकारी के रूप में प्रस्तुत करती है जो अपनी धरती को पराधीनता से मुक्त कराने के लिए ''सेवा पथ पर' चला जाता है, ''छोड़ अपना परिचित संसार''। कविता यह संकेत भी देती है कि ''वीर भोग्या'' वसुंधरा ''उस अरण्य में बैठी प्रिया अधीर'' है और ''स्वर्ग के अभिलाषी ऐ वीर'' का इंतज़ार कर रही है। वाचक आश्वस्त है कि उस वीर को उसकी प्रिया मिलेगी। अपनी संरचना में तीसरी कविता प्रेम कविता जैसी लगती है जिसमें अंग्रेज़ी के मध्ययुगीन रोमांस विधा की झलक मिलती है और हिंदी के राम-सीता या राधा-कृष्ण जैसे मिथकीय रोमांस की छायाएँ भी हैं, मगर इस कविता का वैचारिक आधार मुक्ति की संवेदना से ही जुड़ा हुआ है। इस कविता में वाचक बार-बार ''नयन'' के बिंब को लाता है, ''निरंजन बने नयन अंजन''। नयन में अंजन से शोभा भी बढ़ती है और ज्योति भी। निराला के काव्य को ध्यान से पढ़ें, तो ''नयन'' के बिंब का बहुत ही सार्थक प्रयोग जगह-जगह मिलेगा। दरअसल, मुक्ति की विचारधारा ''नयन'' का ''अंजन'' है, जिसे आंज कर नयी ज्योति प्राप्त होती है, क्रांतिकारी विश्वदृष्टि के बगैर स्वाधीनता प्राप्त करना संभव नहीं। पांचवी कविता के बिंब इसी दृष्टि की महत्ता को सूचित करते हैं, इसीलिए बार-बार यह पंक्ति आती है, ''बने नयन अंजन''।

''राजे ने अपनी रखवाली की'' कविता स्पष्टत: वर्ग-विभाजित समाज में शोषक वर्ग के वर्चस्व से जुड़ी असलियत को खोलती है। वाचक ने इस कविता में शोषण के वर्ग आधार और उस पर खड़ी संरचना या सुपरस्ट्रक्चर के चरित्र को उद्घाटित किया है। राजा अपनी रखवाली किला बनाकर, फौजें रखकर तो करता ही है, विचारों के गुलाम भी बनाता है :

कितने ब्राह्मण आये
पोथियों में जनता को बांधे हुए
कवियों ने उसकी बहादुरी के गीत गाये
लेखकों ने लेख लिखे
ऐतिहासिकों ने इतिहास के पन्ने भरे
कितने नाट्य-कलाकारों ने नाटक रचे
रंगमंच पर खेले।
जनता पर जादू चला-राजे के समाज का

समाज में शोषकवर्गीय आधार (''राजे'') और उसे मजबूत करने वाले सुपरस्ट्रक्चर (विचार, साहित्य, कला, विधि विधान, संस्कृति, धर्म आदि) के इस रिश्ते को उक्त कविता का वाचक सामने लाता है। आगे चलकर मुक्तिबोध की कविता, ''अंधेरे'' में का वाचक भी इसी असलियत को अपने समय और समाज में देखता है। वह शोषकवर्गों का ''विचित्र प्रोसेशन'' उस वक्त देखता है जब ''सब सोये हुए हैं।'' उस प्रोसेशन में हैं:

कर्नल, ब्रिगेडियर, जनरल, मार्शल
कई और सेनापति सेनाध्यक्ष
चेहरे वे मेरे जाने बूझे से लगते
उनके चित्र समाचार पत्रों में छपे थे
उनके लेख देखे थे
यहाँ तक कि कविताएं पढ़ी थीं,
भई वाह,
उनमें कई प्रकांड आलोचक, विचारक, जगमगाते कविगण
मंत्री भी, उद्योगपति और विद्वान
यहाँ तक कि शहर का हत्यारा कुख्यात
डोमाजी उस्ताद

(मुक्तिबोध रचनावली-2, पृ0329-30)

6.5 सारांश

निराला की अपनी विचारधाराओं का विकास हुआ होगा, अपने अनुभव, चिंतन, अध्ययन और दोस्तों के संग साथ से तरह-तरह के विचारों को उन्होंने आत्मसात किया होगा जैसा कि हर कवि के साथ होता

है। मगर उनकी कविताओं का वैचारिक आधार उनके घोषित विचारों का पद्यानुवाद हो, ऐसा ज़रूरी नहीं। हर कविता समाज सापेक्ष वैचारिक आधार रखती है, इसलिए जो आलोचक एक ही विचारधारा तलाश करना चाहेंगे, उन्हें निराला के जीवन की ओर जाने की अवैज्ञानिक कोशिश करनी पड़ेगी ही और इससे गलत नतीजे निकल सकते हैं।

निराला के काव्य का वैचारिक आधार जहाँ अलग-अलग कविताओं के भीतर से हासिल करना होगा, वहीं यह उस समय के देश और उसके भीतर हो रही हलचलों और नये मूल्यों के उद्भव और विकास से भी जुड़ा हुआ होगा। कविताओं के इस दुहरे वैचारिक सामंजस्य (आंतरिक और बाह्य) को विश्लेषित-संश्लेषित करना ही सही पाठ-प्रक्रिया हो सकती है। इस प्रक्रिया में आलोचनात्मक विमर्श भी एक और पाठ बनेगा, वह रचना पर आधारित एक रचनात्मक विमर्श होगा, कवि के जीवन या उद्घोषों के आधार पर ''यही सिद्ध करना था'' के ज्यामितीय प्रमेयों की तरह का विमर्श नहीं जिसमें रचना की कोई पंक्ति झूठे सच्चे गवाह की तरह आलोचक द्वारा अदालत में पेश की जाती है।

निराला काव्य के वैचारिक आधार में जो विविधता पायी जाती है, उसका कारण खुद स्वाधीनता आंदोलन के भीतर अनेक विचारधाराओं का समाहित होना है। भारतीय पूंजीपति वर्ग इस आंदोलन की नेतृत्वकारी शक्ति बन चुका था, इसलिए वह ऐसे तमाम विचारों की ''एकता'', ''सामंजस्य'', ''सामरस्य'' का पक्षधर हो गया था जिससे स्वाधीनता हासिल करने में मदद मिलती हो। ये विचार अतीत के दर्शनों में से लिये गये हों, या वर्तमान की स्थितियों से जन्मे हों, या किसी अन्य देश के चिंतकों से हासिल हुए हों। निराला का काव्य इन सभी तरह के विचारों को प्रतिबिंबित करता है। इस ''विविधता में एकता'' का आधार भारत की मुक्ति ही था। निराला के गद्य लेखन और कविता दोनों में से निकलने वाली विचारधाराएं चाहे वे मिथकीय हों या यथार्थवादी एक ही सूत्र में पिरोयी हुई हैं, वह सूत्र है भारत की आज़ादी। मुक्ति की प्रेरणा ने ही उनकी कल्पना को उन्मुक्त किया, प्रेम की उन्मुक्तता को जन्म दिया, प्रकृति प्रेम या कालबोध या मृत्युबोध की रचनाएँ भी मुक्ति के विचारों से ही प्रेरित हैं। जो आलोचक उन्हें निराला के निजी जीवन से जोड़ते हैं, वे गलती करते हैं।

6.6 प्रश्न

1. निराला काव्य का वैचारिक आधार क्या है?
2. क्या एक ही रचनाकार की विभिन्न रचनाओं के भिन्न-भिन्न वैचारिक आधार हो सकते हैं? निराला काव्य को आधार मानकर अपने पक्ष को स्पष्ट करें।

इकाई 7 सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' के काव्य में प्रयोगशीलता की दिशाएं

इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्देश्य
7.1 प्रस्तावना
7.2 प्रयोगशीलता के प्रेरक तत्व
7.3 प्रयोगशीलता में नये और पुराने का सामंजस्य
7.4 काव्य में प्रयोगशीलता का अर्थ
7.5 निराला काव्य में प्रयोगशीलता
7.5.1 कथ्य के क्षेत्र में प्रयोगशीलता
7.5.2 स्वछंद छंद प्रयोग
7.5.3 काव्य-रूपों में प्रयोगशीलता
7.5.4 गीतिकाव्य में प्रयोगशीलता
7.5.5 लंबी कविताओं में प्रयोगशीलता
7.5.6 प्रयोगशीलता और काव्य विकास
7.6 सारांश
7.7 प्रश्न

7.0 उद्देश्य

इस पाठ्यक्रम में निराला काव्य पर यह दूसरी इकाई है। इस इकाई में निराला के काव्य में प्रयोगशीलता के विभिन्न आयामों को रेखांकित किया गया है। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप जान सकेंगे :

- प्रयोगशीलता क्या होती है और प्रयोगशीलता के कारक तत्व कौन-कौन से होते हैं ?
- प्रयोगशीलता में पुराने और नये का क्या संबंध होता है ?
- काव्य में प्रयोगशीलता का क्या अर्थ है ?
- निराला काव्य में प्रयोगशीलता के कौन-कौन से आयाम हैं ?
- निराला के वास्तविक महत्व का आधार उनकी प्रयोगशीलता है।

7.1 प्रस्तावना

कवियों या रचनाकारों के संदर्भ में जब प्रयोग या प्रयोगशीलता की बात की जाती है तब इसका मतलब होता है कि उन्होंने साहित्य के परम्परा से स्थापित मानदण्डों में, भाषा, काव्य-रूपों में कुछ ऐसा नया जोड़ा है जो पहले नहीं था। कवि रचनाकार के ऐसे प्रयोगों के पीछे उनके युग के वैचारिक, सांस्कृतिक दबाव होते हैं। और जो रचनाकार जितना अधिक संवेदनशील होता है, जितना अधिक प्रतिभाशाली और व्यापक जीवनदृष्टि वाला होता है, अपनी रचनाओं में प्रयोग करने की उसकी सामर्थ्य उतनी ही अधिक होती है।

आधुनिक हिंदी कविता में प्रयोग करने की ऐसी सामर्थ्य हमें निराला में दिखाई पड़ती है, जिन्होंने अपने युग के "मुक्ति के स्वप्न" को काव्य में बंधी-बंधायी रूढ़ियों से मुक्ति के रूप में भी देखा और छंद, काव्यरूप, गीतिकाव्य, लंबी कविता आदि में नये प्रयोग कर भारतीय हिंदी काव्य की दिशा भी प्रशस्त की। वास्तव में निराला काव्य में विषय और काव्यरूपों की जैसी विविधता, गहनता और नवीनता है वैसी हिंदी के किसी दूसरे आधुनिक कवि में नहीं है। निराला काव्य में प्रयोगशीलता का जो मतलब है, उसकी जो दिशाएँ, उनका सिलसिलेवार अध्ययन यहाँ हम करेंगे।

7.2 प्रयोगशीलता के प्रेरक तत्व

निराला काव्य में शुरू से ही प्रयोगों की जो विविधता है, उसमें जितना निराला की प्रतिभा का योगदान

है, उतना ही योगदान उस दौर की वैचारिक बौद्धिक सामाजिक चेतना का भी है। भारत में ही नहीं, विश्वभर में जहाँ कहीं भी पुरानी शोषणपरक व्यवस्था से मुक्ति की चेतना बलवती होती है, वहाँ की कविता में हमें कल्पना का मुक्त आचरण देखने को मिलता है। पुराने घिसे-पिटे काव्यरूप, बिंब और प्रतीक, छंद और अलंकरण के तमाम सारे उपकरण तब बासी और उबाऊ लगने लगते हैं। ऐसे दौर के कवि अपनी मुक्त कल्पना से पुराने रूपों को भी नयेपन से भर कर नयी चेतना के अनुरूप रचनाकर्म करते हैं। इसी दौर में कई बार नये प्रयोग इस उच्च स्तर के होते हैं कि उन्हें नयी विधा के रूप में नया नाम देना पड़ता है। पश्चिम में उभरते पूंजीवाद ने जब पुरानी सामंती शोषण व्यवस्था से मुक्ति की चेतना समाज में फैलायी तो उसकी गुणात्मक परिणति 1789 की फ्रांस की क्रांति में हुई। इस क्रांति के समय तीन नये नारे दिये गये ; स्वाधीनता, समता, बंधुत्व। इन तीन शब्दों ने विचारों और मूल्यों के क्षेत्र में नये परिवर्तन कर दिये, साहित्य में इनका प्रतिफलन नये बिंबों, प्रतीकों, काव्यरूपों आदि में तो हुआ ही, "उपन्यास" नामक नयी विधा का भी जन्म इन्हीं विचारों और मूल्यों के कारण हुआ। इससे पहले महाकाव्य नामक विधा में काव्यनायक के लिए किसी राजा, महाराजा या राजकुमार को ही चुनना अनिवार्य था, काव्यशास्त्री "धीरोदात्त नायक" की शर्त लगाते थे, (देखिए, निराला की ही कविता, "राजे ने अपनी रखवाली की।") इस शर्त से मनुष्य और मनुष्य के बीच "समता" का मानवमूल्य खंडित होता था, तब साधारण जन को नायक के रूप में चित्रित करने के लिए नयी विधा की ज़रूरत महसूस हुई और इस तरह "नावेल" जिसका अंग्रेज़ी में अर्थ ही है "नया", अस्तित्व में आया। इसीलिए गुजराती भाषा में इस नयी विधा को "नवलकथा" नाम दिया गया।

जिस तरह फ्रांस के उदीयमान पूंजीपतिवर्ग ने नये विचारों, नये मानवमूल्यों से चेतना में परिवर्तन ला दिये, जिनसे रचनाकारों में प्रयोगशीलता की नयी धारा प्रवाहित हुई, उसी तरह हमारे यहाँ के उदीयमान पूंजीपतिवर्ग ने भी अपने लिए भारतीय उपमहाद्वीप के बाज़ार को ब्रिटिश पूंजीपतियों के शिकंजे से मुक्त कराने के लिए कुछ नये मानवमूल्यों को समाज में पैदा किया। पहले "राष्ट्र" का बोध (जिसे हम भारतेंदु हरिश्चंद्र के समय में "भारत दुर्दशा" आदि में देखते हैं, फिर मैथिलीशरण गुप्त की "भारत भारती" में पाते हैं) चेतना में जाग्रत किया। पश्चिम में यह काम वहाँ के व्यापारिक पूंजीवाद ने फ्रांस की क्रांति से बहुत पहले कर दिया था जिसके लिए धर्म को मोहरा बनाया गया था और रोम के कैथलिक चर्च के खिलाफ राष्ट्रीय भावनाएं पैदा करके "राष्ट्रीय चर्च" की स्थापना करवायी थी। सामंती शोषण व्यवस्था वाले तत्व रोम के चर्च के पक्षधर रहे जबकि व्यापारिक पूंजीवादी तत्व "राष्ट्रीय चर्च" के साथ हुए. इस मुद्दे को लेकर वहाँ "राष्ट्रवाद" की भावना अस्तित्व में आयी। हमारे यहाँ यह बोध सामंतवाद के खिलाफ संघर्ष करके पैदा नहीं हुआ, यहाँ के उदीयमान पूंजीवाद ने ब्रिटिश साम्राज्यवाद के खिलाफ संघर्ष में "राष्ट्रवाद" की भावना और उसके कुछ ही दिनों बाद "स्वाधीनता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है" के माध्यम से मुक्ति की भावना समाज में पैदा की। इसी सामाजिक चेतना ने कवियों की कल्पना को मुक्त किया और उन्होंने "राष्ट्रीय" गौरव को बढ़ाने के महान उद्देश्य से प्रेरित होकर साहित्य में नयी प्रयोगशीलता अपनायी जिससे कि वे अपने साहित्य के भंडार को बेहतर से बेहतर कृतियों से भर सकें। हमारे यहाँ भी उपन्यास विधा का जन्म हुआ, कहानी विधा का विश्व स्तरीय माध्यम अस्तित्व में आया। कविता में नये-नये प्रयोग हुए। नाटकों की स्तरीय रचनाएँ हुईं। इन सभी रचनात्मक कार्यों के पीछे प्रेरक शक्ति हमारी आज़ादी की लड़ाई ही थी जिसका नेतृत्व यहाँ का नवोदित पूंजीपतिवर्ग कर रहा था।

7.3 प्रयोगशीलता में नये और पुराने का सामंजस्य

पश्चिमी साहित्य में फ्रांस की क्रांति से पैदा हुए नये मानवमूल्यों से प्रेरित होकर कवियों ने जो नये प्रयोग किये, उनमें पुराने साहित्य से निकलने वाले सामंती मूल्यों से सामंजस्य बिठाने की कोशिश नहीं मिलेगी। हमारे यहाँ सामंतवाद से निर्णायक संघर्ष अभी तक नहीं लड़ा गया। भारतीय पूंजीपतिवर्ग ने भारत के सभी वर्गों के साथ "एकता", "सामंजस्य", "सामरस्य" की विचारधारा का व्यापक प्रचार किया। यहाँ की "विविधता में एकता" को भी अपने इसी उद्देश्य के लिए प्रचारित किया क्योंकि राष्ट्रीय मुक्ति इस एकता के बिना संभव नहीं थी। यही वजह है कि भारतीय साहित्य में पुराने काव्यप्रयोगों को भी निषिद्ध नहीं माना, न विचारों के स्तर पर और न फार्म रूप के स्तर पर। कविता में जहाँ नये से नये प्रयोग मिलेंगे, वहीं कवित्त और सवैयों का भी इस्तेमाल मिलेगा। भारत में अतीत को गौरवान्वित करने वाले राजाओं और महाराजाओं के किस्से भी मिलेंगे और फटेहाल किसान और मजदूर और भिक्षुक भी मिलेंगे। इस "विविधता में एकता" में एक ही सूत्र काम कर रहा था, भारत में राजा से रंक तक एक

पक्ष में हों, सब के बीच "सामरस्य" हो और ब्रिटिश साम्राज्यवाद से मुक्ति मिले। प्रयोगों के स्तर पर भी नये और पुराने का सामंजस्य जिसे शुक्ल जी की शब्दावली में "विरुद्धों का सामंजस्य" कह सकते हैं इसी वजह से मिलता है। प्रयोगों में इस सामंजस्य को छायावाद के कवियों में सबसे ज्यादा स्पष्ट रूप में देखा जा सकता है। निराला के काव्य में दिखायी देने वाली प्रयोगशीलता का भी यही रहस्य है। इसमें उनकी प्रतिभा का भी योगदान है, लेकिन देश और काल की सामाजिक चेतना उन्हें लगातार प्रयोगशीलता की नयी दिशाएं तलाश करने की ओर प्रेरित कर रही थी।

7.4 काव्य में प्रयोगशीलता का अर्थ

काव्य में प्रयोगशीलता का अर्थ है नये-नये कथ्य, नये बिंब, नये प्रतीक, नये छंद, नयी लय और कविता के दायरे में समाने वाले नये भाषिक प्रयोग। जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, इन प्रयोगों की प्रेरणा रचनाकारों को अपने समय की सामाजिक चेतना से मिलती है। पतनशील सामंती युग में राजाओं को रिझाने के लिए, या उनकी सत्ता को बरकरार रखने के लिए कवियों ने राजाओं के संरक्षण में या तो दरबारी कविताएं लिखीं जैसा कि हमारे यहाँ रीतिकाल में हुआ, या फिर क्लासीकल साहित्य के कथ्य और रूप को अपनाकर काव्य रचना की गयी जैसा कि अंग्रेज़ी साहित्य में अठारहवीं सदी में हुआ जिसे वहाँ "नवक्लासीकल युग" भी कहा जाता है। इन दोनों तरह के साहित्यों में प्रयोगशीलता की गुंजाइश बहुत कम होती है। सामंती अभिरुचि का एक ढांचा बन जाता है, उसी में कारीगरी करके रचनाकार को रचना करनी पड़ती है। हमारे यहाँ रीतिकाल में श्रृंगार रस या वीर रस की कविताएं जो राजा से अशर्फी हासिल करने के लिए लिखीं गयीं, उनमें नये प्रयोग कम ही मिलेंगे, यदि मिलेंगे भी तो "सौंह करै, भौंहनि हंसे, देन कहै नटि जाय" जैसे मिलेंगे। अंग्रेज़ी साहित्य में "क्लासीसिज्म" की विचारधारा को एक ही तरह के छंद में रचा गया जिसे "हीरोइक कपलेट" कहा गया। इस विचारधारा का सारतत्व यह था कि मनुष्य की इस सृष्टि में जो जगह है, उसका अतिक्रमण करने की कोशिश उसे नहीं करनी चाहिए, वह सीमाओं में आबद्ध है जैसे कि प्राचीन ग्रीक साहित्य में काव्यनायक सीमाबद्ध हुआ करते थे। जिसने भी उन सीमाओं का उल्लंघन किया, उसे दंड मिला। प्रसिद्ध नाटककार सोफोक्लीज ने (जिसके नाटकों को अरस्तू ने अपने काव्यशास्त्र का माडल माना था) जिन नायकों की सृष्टि की, वे सब अपनी सीमा का उल्लंघन करने के कारण त्रासद अंत को प्राप्त करते हैं। क्लासीकल साहित्य मनुष्य को बार-बार यही याद दिलाता है कि तू कुछ भी नहीं है, "आत्मानम् विधि"। या फिर "होइहि सोइ जो राम रचि राखा/को करि तरक बढ़ावहि साखा"। "होता है वही जो मंजूरे खुदा होता है।" बार-बार सीमाओं में बधें होने का अहसास दिलाने के कारण "नवक्लासीकल युग" के साहित्य में कल्पना मुक्त नहीं हो पायी, इसलिए उसमें प्रयोगशीलता की गुंजाइश नहीं थी। शोषण पर आधारित व्यवस्था अपने पतनकाल में बार-बार अतीत की "क्लासीकल" विचारधारा की ओर समाज का मुंह मोड़ने की कोशिश करती है। ऐसे वक्त में रचना में प्रयोगशीलता के अवसर कम होते हैं, कल्पना उन विचारों में आबद्ध हो कर पुराने कथ्य को ही पुराने रूपों में दुहराती रहती है जैसा कि हमारे यहाँ रीतिकाल में हुआ और अंग्रेज़ी साहित्य में अठारहवीं सदी के दौर में रचित "नवक्लासीकल" साहित्य में हुआ जिसके खिलाफ प्रतिक्रिया फ्रांस की क्रांति के बाद हुई और रोमांटिक साहित्य रचा गया।

हमारे यहाँ, जैसा कि कहा जा चुका है, सामंतवाद के खिलाफ कोई निर्णायक लड़ाई नहीं लड़ी गयी, इसलिए साहित्य में भी पुराने बिंब, प्रतीक, मिथक और भाषिक संरचनाएँ दिखायी दे जायेंगी। लेकिन स्वाधीनता संघर्ष ने जिन नये मानवमूल्यों को जन्म दिया, उनसे यहाँ की कल्पना भी मुक्ति की दिशा में बढ़ी और "नये" के प्रति रचनात्मक ललक दिखायी दी। अतीत के प्रति मोह रखते हुए भी यहाँ के रचनाकारों ने राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन के दौरान लिखी रचनाओं में "नव" के प्रति अपनी आकांक्षा भाषिक प्रयोगों में भी सबसे ज्यादा मुखरित की। फ्रांस की क्रांति के दौर में यूरोप के साहित्य में ऐसे बिंब, प्रतीक और मिथक बहुत अधिक मिलेंगे जो "स्वतंत्रता", "समता" और "भाईचारा" जैसे नये मानवमूल्यों का अर्थ ध्वनित करते थे। मसलन, आकाशचारी बिंब, जैसे पक्षी, बादल, इंद्रधनुष, चंद्र, सूर्य, पवन, तारांगण खूब मिलेंगे। किसी न किसी पक्षी पर अंग्रेज़ी के रोमांटिक कवियों ने कविता ज़रूर लिखी क्योंकि मुक्त गगन में उड़ान भरने वाली कल्पना को "पक्षी" से बेहतर या "बादल" से बेहतर किस बिंब से चित्रित किया जा सकता था। वर्डस्वर्थ ने "कोयल" पर, "बादल" पर, "इंद्रधनुष" पर कविताएं लिखीं, ये कविताएं "स्वतंत्रता" के नये मूल्य की चेतना प्रतिबिंबित करती हैं, उन्होंने भाईचारा और समता जैसे मूल्यों को प्रतिबिंबित करने वाली "माइकेल", "कम्बरलैंड का भिक्षुक", "दृढ़ निर्णय और स्वतंत्रता" (या "जोंक पकड़ने वाला") जैसी कविताएं लिखीं। कीट्स ने भी "नाइटइंगेल"

नामक पक्षी पर कविता लिखी, शैली ने "स्काइलार्क" नामक पक्षी पर कविता लिखी। "पश्चिमी पवन" पर भी उनकी कविता है। उस दौर के कवियों ने "शिशु" पर भी कविताएँ लिखीं। और ग्राम्य जीवन पर कविताएं लिखीं जो कि अठारहवीं सदी के साहित्य में निषिद्ध विषय था। ये सब कविता में नये प्रयोग थे। कविता की भाषा के बारे में भी यह कहा गया कि साधारण जन की भाषा ही आदर्श काव्यभाषा होती है हालांकि उसमें से "चुनाव" करने की बात भी कही गयी। यह नयी प्रयोगशीलता की ही बात थी जो साहित्य में शास्त्रीय मुद्दा बनकर सामने आ रही थी।

इस तरह की प्रयोगशीलता हमारे यहाँ भी छायावाद के समय में सामने आ रही थी। मुक्ति के बिंब के रूप में "प्रकृति " या उसके उपादान खूब आ रहे थे क्योंकि प्रकृति मुक्त है, आकाशचारी बिंब जैसे "बादल", "पक्षी", "आकाशदीप", पवन, "सूर्य", "चंद्र", "तारागण" हमारे यहाँ भी छायावादी साहित्य में भरपूर मिलते हैं।

7.5 निराला काव्य में प्रयोगशीलता

जैसा कि पीछे कहा चुका है कि छायावाद में "नव", या "नूतन" के प्रति अभूतपूर्व ललक है, यह ललक निराला काव्य में भी जगह-जगह मिलती है। निराला की रचनाशीलता के सामने दो चुनौतियां थीं, एक तो खड़ी बोली के विकास की, दूसरे उसको नयी काव्यभाषा के रूप में प्रस्तुत करने की। रूपगत विविधता और प्रयोगशीलता से संपन्न रचनाएँ निराला के साहित्य में हमें शुरू से ही इसी वजह से मिलती हैं। निराला ने अपने लेखों में भाषा और साहित्य के उच्च स्तर से प्रेरणा ले कर हिंदी भाषा और साहित्य को भी उसी स्तर तक या उससे भी आगे ले जाने की रचनात्मक कोशिश की। वे बंगला के लगभग सभी बड़े लेखकों और बुद्धिजीवियों के ज्ञान और कर्म के उदाहरण अपने गद्य-लेखन में देते हुए यही तड़प प्रदर्शित करते हैं कि हिंदी भाषा और साहित्य भी उच्च कोटि का हो जाये। इसके लिए वे स्मृति, सत्ता और भविष्यत (यानी अतीत, वर्तमान और आगे के विचार और ज्ञान) के भंडार में से रत्न चुनने और अपने काव्य में पिरोने में कतई संकोच नहीं करते थे। वे अन्य भाषाओं से शब्द लेकर अपनी कविता में नये प्रयोग करते थे, इसी तरह के प्रयोग लय, छंद, अलंकार आदि के भी करते थे और इस तरह अपनी कविता में नयापन लाने की कोशिश करते थे। "वीणावादिनि वर दे" का वाचक सरस्वती से यही वरदान मांगता है:

नव गति, नव लय, ताल-छंद नव
नवल कंठ, नव जलद-मंद्र रव
नव नभ के नव विहग वृंद को
नव पर नव स्वर दे।

"नव स्वर" की इस चाह के ही कारण निराला के काव्य में प्रयोगशीलता की विविध धाराएं देखने को मिलती हैं। इस बारे में दूधनाथ सिंह ने ठीक ही कहा है कि "अपने समकालीनों में निराला ही एक ऐसे कवि हैं, जिनके विराट, सर्वग्रासी प्रतिभाशाली व्यक्तित्व में काव्य-रचना-प्रक्रिया के अनेक स्तर हर समय साथ-साथ क्रियाशील रहे हैं।" (निरालाः आत्महंता आस्था, पृ0 15) दूधनाथ सिंह ने उदाहरण देकर यह स्पष्ट किया है कि भाषा, संवेदना और काव्य उपकरणों के प्रयोगों में विविधता उनकी शुरू से लेकर अंत तक की कविताओं में मिलती है। उनके पहले कविता-संग्रह में ही विविधता की यह बानगी मिल जाएगी, भाषा में पुराने और नये प्रयोग, काव्यरूपों (जैसे गीत, लंबी कविता, मुक्तछंद काव्य) के पुराने और नये प्रयोग पहले संकलन "अनामिका" से लेकर अंतिम संकलन "सांध्यकाकली" तक में मिलेंगे। "नव स्वर" की यह तलाश निराला ने अपने पूरे काव्य-जीवन में जारी रखी।

7.5.1 कथ्य के क्षेत्र में प्रयोगशीलता

प्रयोगशीलता की दृष्टि से निराला हिंदी काव्य-जगत में बेजोड़ माने जा सकते हैं। अपनी इस प्रवृत्ति का उद्घाटन करते हुए इन्होंने स्वयं लिखा है कि मैंने 'भाव, भाषा और छंद की उलटी गंगा बहाई है।' इनकी प्रयोगशीलता का सर्वाधिक महत्वपूर्ण पक्ष है, काव्य-विषय संबंधी प्रयोगशीलता। इस दृष्टि से इन्होंने छायावाद के बंधन को पूरी तरह अस्वीकार कर अपनी स्वछंद प्रकृति का परिचय दिया है। 'जूही की कली', 'संध्या सुंदरी' जैसी प्रकृति से संबद्ध उत्कृष्ट छायावादी रचनाओं के साथ 'राम की शक्तिपूजा', 'तुलसीदास', 'सरस्वती वंदना' आदि ऐतिहासिक पौराणिक रचनाओं में वे छायावाद को उत्कर्ष प्रदान करते हैं। लेकिन अपनी गद्यात्मक रचनाओं में कुल्ली भाट, बिल्लेसुर बकरिहा, चतुरी

चमार आदि के साथ ही कविता के क्षेत्र में 'वह तोड़ती पत्थर', 'भिक्षुक', 'रानी और कानी', 'गरम पकौड़ी', 'खजोहरा', 'चरखा चला', 'कुत्ता भोंकने लगा', 'डिप्टी साहब आए', 'छलांग मारता चला गया, 'झींगुर डँटकर बोला , 'महंगू महँगा रहा', 'टूटी बांह जवाहर की' आदि ऐसे विषय हैं, जो अन्य छायावादी कवियों के लिए अकल्पनीय रहे हैं। मानव जीवन के, विशेषकर अपने युग जीवन के किसी भी पहलू को इन्होंने कविता के क्षेत्र में वर्जित नहीं माना। अपनी इन कविताओं और अन्य बहुत सी कविताओं के माध्यम से निराला ने अपने युग की राजनीति, प्रशासनिक व्यवस्था, न्याय व्यवस्था, सामंतीय शोषण पर आधारित व्यवस्था में खुलकर हस्तक्षेप किया। उनकी कविता की यह धार अन्य छायावादी कवियों में प्रायः नहीं मिलेगी। इस प्रकार की सारी विशेषताएँ निराला में उनकी प्रयोग धर्मिता के कारण ही आयी हैं।

7.5.2 स्वच्छंद छंद प्रयोग

निराला ने अपनी प्रारंभिक कविताओं में ही मुक्ति की चेतना को प्रतिबिंबित किया था। यह चेतना "बंधनमय छंदों" से मुक्ति की चाह के रूप में भी परिलक्षित होती थी। अपनी इस चाह को उन्होंने "प्रगल्भ प्रेम" कविता में यों कहा भी था:

आज नहीं है मुझे और कुछ चाह
अर्धविकच इस हृदयकमल में आ तू
प्रिये छोड़कर बंधनमय छंदों की छोटी राह

अपनी इस आकांक्षा को निराला ने अपने पहले काव्य-संग्रह की एक कविता "जुही की कली" में भी एक नये प्रयोग की तरह फलीभूत किया था। "जुही की कली" में हमें जो नया स्वछंद छंद प्रयोग दिखायी देता है, उसमें पुराने और नये का मेल किया गया है। उसकी लय में कवित्व का गुण है, लेकिन झलक मात्र के लिए। पहला खंड स्वच्छंद है, लेकिन भाषा में अनुप्रास का खूब प्रयोग है, "विज़न-वन-वल्लरी", "स्नेह-स्वप्न-मग्न", "विरह-विधुर", "दूर देश" । दूसरे खंड में "आई याद" के साथ तुकांत पंक्तियां हैं, फिर स्वच्छंद पंक्तियां है और उसके बाद फिर चार पंक्तियाँ तुकांत हैं, और तदुपरांत कविता के अंत तक स्वच्छंद रचना है। यह एकदम नया प्रयोग था। यह कविता 1916 में लिखी गयी थी और उस समय के बीच देखें तो इस अभिनव प्रयोग की महत्ता समझ में आ सकती है। भाषा के स्तर पर देखें तो "जुही की कली" में संस्कृतनिष्ठ भाषा है तो बोलचाल की भाषा का भी मिश्रण है। इस कविता में क्रम इस तरह रखा है कि पहले संस्कृतनिष्ठ, फिर बोलचाल की भाषा, फिर संस्कृतनिष्ठ, फिर बोलचाल की भाषा। इसी कालखंड में लिखी "अध्यात्म फल" शीर्षक कविता में एक ही साथ भाषा और छंद के एकदम नये प्रयोग हैं :

जब कड़ी मारें पड़ी, दिल हिल गया
पर कभी चूं भी न कर पाया यहाँ
मुक्ति को तब युक्ति से मिल खिल गया
भाव जिसका चाव है छाया वहाँ

पूरी कविता को इसी पैटर्न पर लिखा गया है। इस पैटर्न में हर पंक्ति में बीच में दो तुकें हैं जैसे पहली पंक्ति में "कड़ी" और "पड़ी", दूसरी पंक्ति में "कभी" और "चूं भी", तीसरी पंक्ति में "मुक्ति" और "युक्ति", चौथी पंक्ति में "भाव" और "चाव" । इसके बाद अंग्रेज़ी के "सानेट" काव्यरूप की तरह पंक्ति की आखिरी तुकें नये तरीके से सजायी हैं, पहली पंक्ति की तुक तीसरी से मिलती है और दूसरी पंक्ति की तुक चौथी पंक्ति से। "दिल हिल गया" की तुक "मिल खिल गया" से और "पाया यहाँ" की तुक "छाया वहाँ" से मिलती है। हिंदी में यह अभिनव प्रयोग था। इस पैटर्न को कविता के पाँचों चौपदों में निभाया है।

"जागो फिर एक बार" के दोनों खंड भी स्वछंद छंद में लिखे हैं जैसा कि दूसरे खंड के अंत में एक पंक्ति भी आती है, "मुक्त हो सदा तुम/ बाधा-विहीन-बंध छंद ज्यों" । लेकिन "राम की शक्तिपूजा" में अंग्रेज़ी के "हीरोइक कपलेट" जिसका प्रयोग अठारहवीं सदी के सभी कवियों ने इंग्लैंड में किया था और जिसमें अलेग्जैंडर पोप और ड्रायडन ने अपने व्यंग्य महाकाव्य लिखे थे को हिंदी में सबसे पहले निराला ने इस्तेमाल किया। यह भी अभिनव प्रयोग था। लेकिन "बादल राग" की कविताओं में फिर स्वछंद छंद का प्रयोग मिलेगा। बादल की स्वच्छंद वृत्ति के अनुकूल छंद का भी इस्तेमाल हुआ है। वाचक बादल को संबोधित करते हुए कहता है :

ऐ निर्बंध !
अंध-तम-अगम-अनर्गल-बादल !
ऐ स्वच्छंद !
मंद-चंचल-समीर-रथ पर उच्छृंखल !
ऐ उद्दाम !
अपार कामनाओं के प्राण !
बाधारहित विराट् !

बादल के उक्त बिंबों की सारी विशेषताएं निराला ने इन कविताओं की छंद योजना में भी भर दी हैं।

निराला ने स्वच्छंद छंद प्रयोगों में ध्वन्यात्मकता का बहुत ही खूबसूरत प्रयोग किया है। हालांकि निराला को मात्रिक छंद-रचना में भी महारत हासिल थी जिसका परिचय उन्होंने अनेक कविताओं और गीतों में दिया है, फिर भी ध्वन्यात्मकता को उन्होंने प्राथमिकता दी। "बादल राग" तो इसका सबसे सुंदर उदाहरण है। "राम की शक्तिपूजा" में युद्ध का वर्णन और बाद में भावों के अनुसार ध्वन्यात्मकता का निर्वाह सचमुच अद्भुत है। तुलसीदास उनके प्रिय कवि हैं और यह गुण उन्होंने हिंदी के इस महाकवि की परंपरा को आगे बढ़ाने के लिए ही सीखा होगा। "रामचरितमानस" में तुलसीदास ने भी ध्वन्यात्मकता के अद्भुत प्रयोग किये हैं। जनक वाटिका में सीता को देखकर राम अपने भाई लक्ष्मण से जिन शब्दों में प्रतिक्रिया व्यक्त करते हैं, उनमें ध्वन्यात्मकता का समीचीन प्रयोग है : "कंकन किंकिन नूपुर धुनि सुनि/कहत लखन सन राम हृदय गुनि/मानहु मदन दुंदुभि दीन्ही/मनसा विश्व विजय कै कीन्हीं।।" यहाँ दुंदुभि की ताल ही चौपाई में प्रयुक्त शब्दों में व्यक्त कर दी गयी है। इसी तरह राक्षसों से युद्ध वर्णन में भी ध्वन्यात्मक शब्दों का प्रयोग हुआ है। वैसा ही प्रयोग हम "राम की शक्तिपूजा" के प्रारंभिक खंड में देखते हैं। अंग्रेज़ी में जिसे "औनोमैटोपोइया" अलंकार कहा जाता है, उसका प्रयोग निराला ने अपनी काव्यभाषा में खूब किया है।

7.5.3 काव्य-रूपों में प्रयोगशीलता

निराला का पूरा रचनाकर्म भारत के मुक्ति आंदोलन से प्रेरित है। उनका यह सपना है कि स्वाधीन भारत में आधुनिक हिंदी ही राष्ट्रभाषा होगी जैसा उस समय अधिकांश लोंगों का सपना था और जिसका प्रतिबिंबन स्वाधीन भारत के नवनिर्मित संविधान में भी हुआ। वह सपना उचित था या नहीं, इस पर उस समय विचार करने का मतलब देश में पैदा हो रही राष्ट्रीय एकता को तोड़ना था, इस वजह से यह विचार पुख्ता होता गया कि स्वाधीन भारत में एक ही भाषा राष्ट्रीय भाषा होगी और वह हिंदी ही हो सकती है। हालांकि इस सपने ने हिंदी प्रेमियों के बीच एक अंधभाषावाद पैदा कर दिया, जिससे स्वाधीन भारत में अन्य भाषाभाषी राज्यों के नागरिकों में हिंदी विरोध की मनोदशा मुखरित होने लगी और 1965 तक हिंदी को राष्ट्रभाषा बना देने की संविधान की अयथार्थवादी परिकल्पना पूरी नहीं हुई और न निकट भविष्य में पूरी हो पाएगी। निराला को अपने समय में हिंदी भाषा और साहित्य को समृद्ध से समृद्ध बनाने की चिंता बहुत अधिक थी। अपनी इस चिंता को उन्होंने अपने लेखों, भूमिकाओं आदि में बार-बार अभिव्यक्त किया था। हिंदी साहित्य के भंडार को भरने के लिए भी वे "मुक्ति" का वैचारिक तर्क देते थे जिसका उल्लेख कई जगह उनकी गद्य रचनाओं में आता है। "परिमल" की भूमिका में उनका यह तर्क लगभग गीत की टेक की तरह आता है। "मनुष्यों की मुक्ति की तरह कविता की भी मुक्ति होती है। ...मुक्त काव्य साहित्य के लिए कभी अनर्थकारी नहीं होता, किंतु उससे एक प्रकार की स्वाधीन चेतना फैलती है, जो साहित्य के कल्याण की ही मूल होती है।" उसी भूमिका में आगे एक जगह लिखते हैं कि "साहित्य की मुक्ति उसके काव्य में दिख पड़ती है। इस तरह जाति के मुक्ति प्रयास का पता चलता है।"

"मुक्ति" की इस भावना से ही प्रयोगशीलता को प्रोत्साहन मिलता है। निराला ने इसी भावना के तहत हिंदी काव्य में नये से नये प्रयोग किये। परंपरा से जो साहित्यिक उपकरण उपलब्ध थे, उन्हें परिमार्जित करके इस्तेमाल किया और बांग्ला साहित्य आदि से भी प्रेरित होकर नये प्रयोग किये। अंग्रेज़ी काव्यरूपों से प्रेरित होकर भी उन्होंने नये काव्यरूप रचे। इसलिए जहाँ हम निराला के साहित्य में पारंपरिक गीत विधा का चरम उत्कर्ष देखते हैं, वहीं आदि को परिमार्जित करके नये रचे काव्यरूपों को भी उनकी रचनाशीलता में पिरोया हुआ पाते हैं। आख्यानपरक लंबी कविताएं जहाँ मिलती हैं वहीं कवित्त गीति नाट्य के प्रयोग भी हैं। ग़ज़ल के प्रयोग हैं तो सानेट की झलक मारते हुए काव्यरूप हैं। मुक्तछंद की

कविताएँ तो उनकी रचनाशीलता की महत्वपूर्ण अंग हैं। प्रयोगशीलता का ऐसा बहुआयामी रचनासंसार उस युग में निराला जैसे मुक्तिप्रेमी कवि में ही संभव था।

निराला के काव्य में प्रयोगशीलता को हिंदी आलोचकों ने कई कोणों से देखा और परखा है। डॉ0 रामविलास शर्मा ने अपनी पुस्तक "निराला की साहित्य साधना - द्वितीय खंड" में "कला" शीर्षक उपखंड में निराला की कविता के शिल्प संबंधी प्रयोगों की विस्तार से चर्चा की है। अन्य आलोचकों ने सुविधा के लिए निराला की कविताओं का वर्गीकरण करके उनमें प्रयोगशीलता को रेखांकित किया है। पद्मसिंह शर्मा "कमलेश" ने निराला के संपूर्ण काव्य को कुछ रूपगत विशेषताओं के आधार पर चार श्रेणियों में बाँटा है :

1. गीत
2. प्रगीत
3. आख्यानक काव्य
4. गीति नाट्य

उन्होंने विस्तार से इन श्रेणियों को व्याख्यायित करके निराला काव्य में रूपगत प्रयोगशीलता को रेखांकित किया है। (देखें, लोकभारती मूल्यांकन माला के तहत प्रकाशित "निराला", संपादक : इंद्रनाथ मदान, पृ0 152) दूधनाथ सिंह ने रूप और अंतर्वस्तु दोनों के आधार पर निराला के संपूर्ण काव्य को छः श्रेणियों में विभाजित किया है, अंतःसंगीत की रचनाएँ, लंबी कथात्मक कविताएं, राष्ट्रीय उद्‌बोधन की कविताएं, काव्य आभिजात्य से मुक्तिप्रयास की रचनाएँ, ऋतु प्रार्थनाएं और प्रपत्ति की कविताएँ। दूधनाथ सिंह का वर्गीकरण और उनका विवेचन निराला काव्य में प्रयोगशीलता के विविध आयामों को समझने में काफी मददगार साबित होता है। उनकी कमी सिर्फ यही है कि हिंदी आलोचना की उस आम प्रवृत्ति से वे भी नहीं बच पाये हैं जो **रचना को रचनाकार के निजी जीवन से पैबंद की तरह जोड़ती चलती है**। आलोचना का इस तरह का विमर्श बहुत पहले पीछे छूट जाना चाहिए था, मगर यह कमी चली आ रही है। दूसरी कमी यह भी है कि किसी न किसी दूसरे बड़े रचनाकार को हेटा सिद्ध करके अपने इष्ट रचनाकार को शीर्षस्थान देने की कोशिश की जाती है। डॉ0 दूधनाथ सिंह ने यह ज्यादती रवीन्द्रनाथ ठाकुर के साथ कर दी है और निराला के अंतःसंगीत को कहीं अधिक "महानता" प्रदान की है जिसकी कतई ज़रूरत नहीं थी। वे लिखते हैं : "रवींद्रनाथ से उनकी महानता रवींद्रनाथ से ठीक प्रतिकूल होने में है, उनके समान दिखने में नहीं।" (वही, पृ0 31) हिंदी आलोचना की यह कौन सी मजबूरी है कि एक रचनाकार की प्रयोगशीलता को महान सिद्ध करने के लिए किसी अन्य रचनाकार को हेटा सिद्ध किया ही जाये ? यह प्रवृत्ति आज भी जगह-जगह हिंदी आलोचना में देखने को मिल जाती है। कहीं ऐसा तो नहीं कि चेतना में सदियों पुरानी जड़ जमाये बैठी सामंती मूल्य व्यवस्था जनित "असमानता" की भावना ही ऐसा करने के लिए प्रेरित करती हो। कहीं हम एक को "राजा" और दूसरे को "रंक" सिद्ध करने की ही कोशिश तो नहीं कर रहे होते हैं ?

7.5.4 गीतिकाव्य में प्रयोगशीलता

अन्य छायावादी कवियों की ही तरह हमें निराला काव्य में भी गीतों का अपार भंडार मिलता है जिसमें हम अनेक तरह के मनोभावों (मूड्स) और शिल्प के स्तर के अनेक नये प्रयोगों को देख सकते हैं। इन गीतों में हमें प्रेम गीत, ऋतु गीत, प्रार्थना गीत, राष्ट्रीय उद्‌बोधन के गीत, मृत्यु गीत और आत्मसाक्षात्कार के दार्शनिक गीत और यहाँ तक कि लोकगीत और ग़ज़लों के नये-नये रूप मिल जायेंगे। गीत विधा भारत के लोकजीवन का हिस्सा तो है ही, इसे साहित्यिक और कलात्मक ऊंचाई भक्ति आंदोलन के दौरान हासिल हुई। निर्गुण कवियों ने इसमें दार्शनिक तत्व का समावेश करके और सगुण कवियों ने लोकजीवन की छवियों और बिंबों से गीत विधा को भरीपूरी कलात्मक रचना का स्वरूप प्रदान किया। निराला में हम इन दोनों परंपराओं को तो देखते ही हैं, भाषिक संरचनाओं के अद्‌भुत प्रयोग भी पाते हैं। निराला ने एक गीत प्रफुल्लित आंखों पर लिखा था, उस गीत में आंखों की जिन-जिन खूबियों को वाचक ने गिनाया है वे सारी खूबियाँ निराला के गीतों पर भी लागू होती हैं :

द्रुमदल दल लोभी फुल्ल नयन ये
जीवन के मधु-गंध-चयन ये।
रवि के पूरक, रंग-रंग के
छाया-छवि कवि के अनंग के
व्यंग्य-*व्यंग्य* के संग-संग के,

अंग-अंग के **शमित शयन** ये।
देह भूमि के सजल **श्याम घन**
प्रणय पवन से ज्योतिर्वर्षण
उर के उत्पल के हर्षण-क्षण
आंदोलन के सृष्ट अयन ये।
प्रेम पाठ के पृष्ठ उभय ज्यों
खुले भी न अब तलक खुले हों,
नित्य अनित्य हो रहे हैं, यों
विविध-विश्व-दर्शन-प्रणयन ये।

जिस तरह आंखों के माध्यम से विविध मूड्स की अभिव्यक्ति होती है, उसी तरह निराला के गीतों के माध्यम से भी। इन गीतों में भी "जीवन" है, "ज्योतिर्वर्षण" है, "श्याम घन" है, "आंदोलन" है, "प्रेम पाठ" है, "विविध विश्व-दर्शन" है, "नित्य-अनित्य" (मृत्यु) का संकेत है, तो "व्यंग्य" भी है।

निराला के गीतों की अंतर्वस्तु में प्रयोगशीलता के जो आयाम ऊपर गिनाये गये हैं, उन पर थोड़ा दृष्टिपात कर लें। पहले "जीवन" को ही लें, पराधीन भारत में अवाम का जीवन कोई जीवन नहीं था, यह अहसास हर संवेदनशील रचनाकार को व्यथित कर रहा था। इसलिए जीवन की आकांक्षा, एक स्वाधीन और मानवीय जीवन जीने की चाह को निराला ने अपने गीतों में अभिव्यक्ति दी। स्वाधीन जीवन तभी संभव है जब पराधीनता की रात में मुंदी हुई आंखे खोली जायें, तभी जीवन में बहार आ सकती है:

प्रिय, मुद्रित दृग खोलो।
गत स्वप्न-निशा का तिमिर जाल
नव किरणों से धो लो।
जीवन-प्रसून वह वृंतहीन
.....
खुल गया उषा-नभ में नवीन

इसी गीत के अंतिम बंध में वाचक बताता है कि वासना प्रेयसी (जिजीविषा) बार-बार कहती है कि "प्रतिदिन के उपवन के/जीवन में **आई बहार**/बहती इस विमल वायु में/बह चलने का बल तो लो।" निराला के ऐसे **बहुत** सारे गीत हैं जिनमें "जीवन" का उल्लेख ज़रूर होता है। एक अन्य गीत का भी **अंत यही** कहता है कि "तुम किरणों से अश्रु पोंछ लेते हो/नव प्रभात जीवन में भर देते हो।" एक अन्य गीत में वाचक "भारति" से कहता है कि "गह कर अकल तूलि, रंग-रंग कर/बहु जीवनोपाय भर दो घर/भारति, भारत को फिर दो वर।" यह अनुनय वाचक "जीवन-धनिके" से कर रहा है। इसी तरह जब वह "घन" से अनुनय करता है कि "घन, गर्जन से भर दो वन" तब उस गीत का अंत भी "जीवन" की मांग से होता है :

गरजो, हे मंद्र वज्र स्वर
थर्राये भूधर भूधर
झरझर झरझर धार झर
पल्लव पल्लव पर जीवन

इसी तरह "अभी न होगा मेरा अंत" शीर्षक गीत में वाचक "जीवन" की उद्दाम लालसा को उद्घाटित करता है:

पुष्प पुष्प से तंद्रालस लालसा खींच लूंगा मैं,
अपने नव जीवन का अमृत सहर्ष सींच दूंगा मैं
.....
मेरे जीवन का यह है जब प्रथम चरण
इसमें कहां मृत्यु
है जीवन ही जीवन

इसी तरह निराला ने "प्रेम" की शाश्वत थीम को भी जब अपने गीतों में पिरोया तो उनमें प्रयोगशीलता के नये आयाम जोड़े। निराला की इस प्रयोगशीलता या मौलिक सर्जना के बारे में दूधनाथसिंह ने लिखा है कि "इस मौलिक सर्जना की पृष्ठभूमि में निराला की प्रेमसंबंधी निजी और महत्वपूर्ण धारणा है। प्रेम उनके लिए वह महान तत्व है जो उन्हें भारयुक्त न करके भारमुक्त करता है। उन्हें पूर्ण बनाता है। व्यक्तित्व के भीतर जो खोखले, अंधेरे कोटर हैं उन्हें भरता है और आलोक फैलाता है। पूर्णता की अनुभूति ही उनके प्रेमगीतों में बार-बार अभिव्यक्त हुई है।" (निराला : आत्महंता आस्था, पृ0 31) जैसा कि कहा जा चुका है, हिंदी आलोचक निराला की हर कविता को उनके "निजी" जीवन या "व्यक्तित्व" से जोड़ देते हैं, इसलिए उनके प्रेमगीतों को भी "लिरिकल" यानी निजी संवेगों की अभिव्यक्ति करार देते हैं तो इसमें आश्चर्य की बात नहीं। हिंदी गीतों की महान परंपरा कभी "लिरिकल" नहीं रही, वह अपने स्वरूप में हमेशा "नाटकीय" रही, चाहे वह विद्यापति के गीत हों या सूर के भ्रमरगीत, उनमें कवि "स्व" से ऊपर उठकर एक वाचक की रचना करता है। निराला ने भी इसी परंपरा को विकसित किया। इसलिए दूधनाथसिंह का यह कथन सही नहीं है कि निराला ने "अपने से अपनी कविता को कभी भी अलगाया नहीं।" हर महान कवि को अपनी कविता को अपने से अलगाना पड़ता है और निराला ने भी यही किया।

दरअसल, प्रेम की थीम का आधार भी हमारा स्वाधीनता संग्राम था। गांधीवाद में सत्य, अहिंसा के साथ "प्रेम" भी मुक्ति का एक साधन था। ये उस दौर के जनवादी मूल्य थे। ब्रिटिश साम्राज्यवाद असत्य, हिंसा और क्रूरता का हिमायती था, उससे लड़ने के लिए सत्य, अहिंसा और प्रेम के मानवीय मूल्य भारतीय जन को एकताबद्ध करते थे, बहुत सारे धर्मों और संस्कृतियों वाले इस देश में ये मूल्य सबकी साझा विरासत थे, इसलिए गांधी ने फ्रांस की क्रांति के तीन नारों "समता, स्वाधीनता, बंधुत्व" की जगह "सत्य, अहिंसा, प्रेम" के तीन नारे दिये। तिलक ने "स्वाधीनता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है" का नारा देकर इस सत्य को उजागर कर दिया। मुक्ति की इस अबाध राष्ट्रीय आकांक्षा ने जीवन के हर स्तर पर पुरानी जकड़बंदी से निजात पाने की नयी करवट ली। प्रेम संबंधों में भी यही नयी करवट अभिव्यक्त हुई जो हमें छायावाद के सभी कवियों में दिखायी देती है। निराला में भी प्रेम की अभिव्यक्ति को इसी परिप्रेक्ष्य मे देखना ज्यादा सही होगा।

प्रेम की अंतर्वस्तु के गीतों में प्रयोगशीलता के नये आयामों की ही तरह निराला के ऋतुगीतों में भी नवीनता झलकती है। "सखि, वसंत आया/भरा हर्ष वन के मन/नवोत्कर्ष छाया" या फिर वसंत के जाने पर लिखा हुआ गीत, "सुमन भर न लिये/सखि, वसंत गया" आदि निराला की प्रयोगशीलता के ही उदाहरण हैं। वर्षा और बादल पर निराला ने बहुत लिखा, गीतों के रूप में भी और कविताओं के रूप में भी। बादल मुक्ति के प्रतीक के रूप में हर साहित्य के रोमांटिक दौर में प्रयुक्त हुआ है। भारतीय कविता में तो इसकी परंपरा पहले से है। निराला ने "अलि, घर आये घन पावस के" जैसे गीत से लेकर "बादल छाये/ये मेरे अपने सपने/आंखों से निकले, मंडराये" और फिर "बादल राग" की मनःस्थिति से मिलते जुलते गीत, "गर्जन से भर दो वन" भी लिखे। उनके ऋतुगीतों में हर्ष, विषाद, मुक्ति की आकांक्षा और अन्य अनेक मानवीय भावों की अभिव्यक्ति मिलेगी, इसीलिए उनके गीत "लिरिकल" न होकर सार्वभौमिक सत्य या भावों की अभिव्यक्ति हैं।

ऋतुगीतों के अलावा निराला ने बहुत से प्रार्थनागीत भी रचे। इन गीतों के केंद्र में भी स्वाधीनता की चाह ही दिखायी देती है। "सरस्वती" के प्रति लिखे गये कई प्रार्थनागीत हैं जिनमें नये ज्ञान, नयी रचनाशीलता, नयी वाणी, नयी लय आदि की मांग है। भारती के बिंब में वे भारतमाता को भी देखते हैं, उसे शक्ति या दुर्गा या श्यामा का रूप भी देते हैं। ये एकदम नये प्रयोग हैं, राष्ट्रीयता के नये मूल्य को निराला ने इस तरह नयी बिंबात्मकता दी :

भारति, जय विजय करे
कनक - शस्य - कमल धरे !
लंका पदतल - शतदल
गर्जितोर्मि सागर - जल
धोता शुचि चरण-युगल
स्तव कर बहु अर्थ भरे !

मातृवंदना के अनेक स्वर नये-नये रूपों में निराला के काव्य में मिलते हैं। किसी गीत का वाचक कहता है कि "भीरुता के बंधे पाश सब छिन्न हों/मार्ग के रोध विश्वास से भिन्न हों/आज्ञा, जननि, दिवस-निशि करूँ अनुसरण।" तो एक अन्य गीत में वाचक कहता है कि "मुक्त करूंगा तुझे अटल/तेरे चरणों पर देकर बलि/सकल श्रेय-श्रम-संचित फल।" एक अन्य गीत में वाचक कहता है कि "प्रात तव द्वार पर/आया, जननि, नैश अंध पथ पार कर।" इसी तरह "एक बार बस और नाच तू श्यामा" जैसे गीत भी अभिनव प्रयोग हैं जिनमें कहीं भी "लिरिकल" तत्व नहीं है, देश की मुक्ति का पावन भाव है, निजत्व का समावेश नहीं।

निराला के कुछ गीत दार्शनिक सवालों पर हैं, इन्हीं गीतों में मृत्यु संबधी गीत भी आते हैं। "मरण को जिसने वरा है/उसी से जीवन भरा है।" या फिर "मुक्ति हूँ मैं, मृत्यु में/आयी हुई, न डरो।" दरअसल, हर बड़े कवि और दार्शनिक में कालबोध रहता ही है, अमरता हासिल करने के लिए यह ज़रुरी है। गौतम बुद्ध को भी यही ज्ञान हासिल हुआ था, निराला ने भी इसे अर्जित किया था कि जो "अस्ति" है, उसे "नास्ति" होना है। इसलिए कालबोध के गीत भी निराला काव्य का एक महत्वपूर्ण अंग हैं। "मैं अकेला/देखता हूँ, आ रही/मेरे दिवस की सांध्य बेला।" या फिर "स्नेह निर्झर बह गया है/रेत ज्यों तन रह गया है।" इसी कालबोध के दार्शनिक पहलू के गीत हैं।

7.5.5 लंबी कविताओं में प्रयोगशीलता

जिस तरह निराला ने गीत विधा को नये-नये प्रयोगों द्वारा एक ऊंचाई प्रदान की, उसी तरह उन्होंने लंबी कविताओं के भी नये-नये प्रयोग किये। इन लंबी कविताओं में शोकगीत, उद्‌बोधन कविताएं, आख्यानपरक कविता, नाट्यकविता आदि के प्रयोग मिलते हैं। "सरोज स्मृति" जैसा शोकगीत हो, या "छत्रपति शिवाजी का पत्र", "यमुना के प्रति", "जागो फिर एक बार" आदि जैसे उद्‌बोधन काव्य हों, या "राम की शक्तिपूजा", "तुलसीदास" जैसे आख्यानक काव्य हों, सभी नये प्रयोग हैं। इनमें निराला ने छंदों, भावों, काव्यभाषा के नये प्रसाधनों का इस्तेमाल करके अपनी प्रतिभा और प्रयोगशीलता का अद्‌भुत परिचय दिया है। "छत्रपति शिवाजी का पत्र" में जहाँ कवित्त छंद की लय वाला मुक्त छंद ईज़ाद किया है तो "यमुना के प्रति" में आल्हा की लय अपनायी है। अंग्रेज़ी के शोकगीत, खासकर टामस ग्रे द्वारा लिखित, "एक गांव के श्मशान में लिखा शोकगीत" की लय को "सरोज स्मृति" में अपनाया है। "राम की शक्तिपूजा" में "हीरोइक कपलेट" की झलक है। इसी तरह उनकी इन रचनाओं में जहाँ भारतीय परंपरा की अलंकारप्रियता है वहीं वाल्ट व्हिटमैन जैसी कैटालागिंग यानी विवरणात्मकता है जिससे उनकी इन लंबी कविताओं में आधुनिक महाकाव्यात्मकता का गुण आ जाता है। इसी तरह निराला काव्यभाषा का भी एक विस्तृत मैदान रचते हैं जिसमें भावोचित भाषा के प्रयोग मिलेंगे, कहीं अत्यंत गरिष्ठ और संस्कृतनिष्ठ और कहीं एकदम बोलचाल की भाषा। अकेले "राम की शक्तिपूजा" को ही देखें तो पायेंगे कि युद्धवर्णन की भाषा में संस्कृतनिष्ठ समासयुक्त भाषा का प्रयोग है, मगर बाद में राम की मनोदशा के बदलने के साथ भाषा को भी बदल दिया गया है।

7.5.6 प्रयोगशीलता और काव्य विकास

निराला में प्रयोगशीलता की जो आकांक्षा थी उसी की वजह से उनकी काव्यधारा में लगातार विकास होता गया। भाव, दर्शन और चेतना में भी बदलाव आता गया। दूधनाथ सिंह ने उनके इस विकास को "काव्य आभिजात्य से मुक्ति का प्रयास" की संज्ञा दी है। निराला ने अपनी काव्ययात्रा के दौरान जब यह महसूस किया कि सदियों से चली आ रही शोषण व्यवस्था साधारण जन को ठगती आ रही है, तो उन्होंने इस सामाजिक सत्य को खोलना शुरू किया। भारत की मुक्ति का अर्थ केवल ब्रिटिश साम्राज्य-वाद से ही मुक्ति नहीं था, सदियों से चली आ रही अमानवीय शोषण व्यवस्था से भी मुक्ति का सवाल हर संवेदनशील रचनाकार के सामने था। निराला ने इस सत्य को उद्‌घाटित किया :

बड़े बड़े ऋषि आये, मुनि आये कवि आये
तरह तरह की वाणी जनता को दे गये
किसी ने कहा कि एक तीन हैं
किसी ने कहा कि तीन तीन हैं
किसी ने नसें टोईं, किसी ने कमल देखे
किसी ने विहार किया, किसी ने अंगूठे चूमे
लोगों ने कहा कि धन्य हो गये
मगर खंजड़ी न गयी

दगा की इस सभ्यता ने
दगा की

"दगा की इस सभ्यता" की पहचान के साथ ही निराला की काव्यभाषा किस तरह बदल गयी, यह उनके विकास का ही द्योतक है। निराला की कविता के इस जनपक्षधर रूप का आधार भी स्वाधीनता आंदोलन ही था जो कि शोषित दलित और साधारण जन की भागीदारी के बगैर सफल नहीं हो सकता था। साधारण जन की इस शक्ति का अहसास जिस तरह फ्रांस की क्रांति के समय यूरोप के रचनाकारों को हो गया था जिन्होंने दीन-हीन जन पर कविताएं और उपन्यास लिखे थे और अपने साहित्य को विकसित किया था, उसी तरह निराला ने भी दीन हीन जनों पर अपनी कविताएं और उपन्यास लिखकर हिंदी साहित्य को समृद्ध किया है। स्वाधीन भारत में भी जब उन्होंने सत्ता का हस्तांतरण शोषकवर्गों यानी पूंजीपतियों और भूस्वामियों के हाथों देखा तो उन्होंने अपनी आलोचनात्मक यथार्थवादी दृष्टि से उस नये सत्य को भी सामने रखा। उनकी परवर्ती रचनाएँ इसी विकास की महत्वपूर्ण कड़ी हैं। "राजे ने अपनी रखवाली की" जैसी रचना इसी वैचारिक विकास को दर्शाती है। "कुकुरमुत्ता" और "नये पत्ते" की रचनाएँ निराला की ऐसी ही प्रयोगशीलता की बेहतरीन मिसालें हैं। ये रचनाएँ नये यथार्थ की उन पर्तों को खोलती हैं जिन्हें उस दौर में समझना आसान नहीं था। इसके लिए जिस मुंहफट भाषा की दरकार थी, निराला ने उसी भाषा का इस्तेमाल किया :

आजकल पंडित जी देश में विराजते हैं।
.....
बड़े बाप के बेटे
बीसियों भी पर्तों के अंदर, खुले हुए
एक एक पर्त बड़े बड़े विलायती लोग
देश की बड़ी बड़ी थातियाँ लिये हुए
राजों के बाजू पकड़, बाप की वकालत से
कुर्सी रखने वाले अनुलंघ्य विद्या से
देसी जनों के बीच
लेंड़ी जमींदारों की आंखों तले रखे हुए
मिलों के मुनाफे खाने वालों के अभिन्न मित्र
.....
विलायती राष्ट्र से समझौते के लिए
गले का चढ़ाव बोर्जुआज़ी का नहीं गया

पंडित जवाहरलाल नेहरू के माध्यम से भारतीय राजसत्ता का यह वैज्ञानिक सार तत्व निराला की उक्त कविता में बड़े पैनेपन से आ गया है। ऐसे दौर में जब डांगेपंथी कम्युनिस्ट जवाहरलाल नेहरू को जनवादी मानकर समर्थन देने की कोशिश में लगे थे, निराला की यथार्थवादी दृष्टि यह सही ही बता रही थी कि नेहरू जी भारतीय बड़े पूंजीपतियों और बड़े भूस्वामियों के हितसाधक थे और विदेशी पूंजीपतियों के साथ भी समझौते को तत्पर थे। इस यथार्थ उद्घाटन के लिए उन्होंने "फ्रेंच" शब्द "बोर्जुआज़ी" जिसे मार्क्सवादी चिंतक पूंजीपतिवर्ग के लिए प्रयुक्त करते हैं का इस्तेमाल अपनी कविता में किया।

इस तरह हम देखते हैं कि निराला काव्य का विकास प्रयोगशीलता की ललक के साथ ही हुआ था। वे हिंदी साहित्य को बहुत समृद्ध और विश्व स्तर का बनाना चाहते थे। इसीलिए उन्होंने अपनी वैचारिक और सौंदर्यशास्त्रीय तैयारी करके वैविध्यपूर्ण रचनाकर्म किया।

7.6 सारांश

इस प्रकार इस इकाई में हमने 'प्रयोगशीलता' के प्रेरक तत्वों पर विस्तार से चर्चा करते हुए देखा कि किस प्रकार समय, युग बदलने पर साहित्य में स्वीकृत विषय और पारंपरित पुराने रूप, पद्धतियाँ, भाषा आदि पुराने पड़ जाते हैं, संप्रेषण की उनकी क्षमता कमतर होने लगती है, और किस प्रकार जागरूक, संवेदनशील रचनाकार नये कथ्य, नये रूप, नये छंद, नयी भाषा आदि का प्रयोग कर उन्हें इस रूप में संवदेनशील बनाते हैं ताकि अपने युग को समग्रता के साथ कलात्मक रूप में संप्रेषित करने में साहित्य कारगर हो सके। हमने यह भी देखा कि प्रयोगशीलता की इस प्रक्रिया में पुराने मूल्यों से यदि निर्णायक

संघर्ष लड़ा गया हो तो नये मूल्य पुराने मूल्यों से तालमेल बिठाकर पैदा नहीं होते लेकिन यदि यह लड़ाई आधी-अधूरी हो तो दोनों तरह के मूल्य एक साथ चलते हुए दिखाई पड़ जाते हैं। यही बात साहित्य पर भी, साहित्यिक विषयों, विधाओं, रूप, भाषा, छंद आदि पर भी समान रूप से लागू होती है। इसके बाद हमने निराला-काव्य में प्रयोगशीलता के तत्वों का विश्लेषण करते हुए देखा कि किस प्रकार निराला काव्य-विषय, भाषा, काव्य-रूप, छंद आदि में प्रयोग करते हैं और काव्य के भविष्य की दिशा निर्धारण में प्रवृत्त होते हैं। इस प्रकार निराला ने काव्य और कथन प्रणाली दोनों ही दृष्टियों से अपनी रचनात्मक प्रयोगशीलता का परिचय दिया है।

7.7 प्रश्न

1. प्रयोगशीलता के प्रेरक तत्वों की चर्चा करें।
2. भाव या कथ्य के क्षेत्र में निराला की प्रयोगशीलता के महत्व पर प्रकाश डालें।
3. काव्य में प्रयोगशीलता का क्या अर्थ है?
4. निराला काव्य में प्रयोगशीलता के विभिन्न रूपों का विवेचन कीजिए।
5. लंबी कविताओं में और गीतों में निराला ने कौन-कौन से प्रयोग किए हैं?

इकाई 8 "राम की शक्तिपूजा" : एक पाठावलोकन

इकाई की रूपरेखा

8.0 उद्देश्य
8.1 प्रस्तावना
8.2 राम की शक्तिपूजा का ऐतिहासिक संदर्भ
8.3 संवेदनात्मक उद्देश्य
8.3.1 सार्वभौमिकता का तत्व
8.4 कविता का पाठावलोकन
8.5 काव्यरूप का सवाल
8.6 संरचनात्मक सौंदर्य
8.7 सारांश
8.8 प्रश्न

8.0 उद्देश्य

निराला पर अभी तक आप दो इकाइयों का अध्ययन कर चुके हैं : निराला के काव्य का वैचारिक आधार तथा निराला के काव्य में प्रयोगशीलता की दिशाएँ। निराला पर यह तीसरी इकाई उनकी प्रसिद्ध कविता 'राम की शक्तिपूजा' पर आधारित है। इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप :

- इस कविता के ऐतिहासिक संदर्भ से परिचित हो सकेंगे,
- इस कविता के संवेदनात्मक उद्देश्य को समझ सकेंगे,
- कविता के पाठावलोकन की प्रक्रिया से गुज़रते हुए कविता के बहुलार्थी, बहुआयामी रूप की जाँच-पड़ताल कर सकेंगे,
- इस कविता के संरचनात्मक सौंदर्य का विश्लेषण कर सकेंगे
- और यह जान सकेंगे कि यह कविता किस प्रकार अपने युग के सत्यों से जुड़कर एक वैश्विक प्रक्रिया को हमारे सम्मुख प्रस्तुत करती है, जिसे सत्य और असत्य की लड़ाई में अपनाना पड़ता है।

8.1 प्रस्तावना

"राम की शक्तिपूजा" पर जो आलोचनात्मक विमर्श अब तक हुआ है उसमें अधिकतर इस कविता के रूप-पक्ष पर पारंपरिक दृष्टि से विचार किया गया है। रस, अलंकार, काव्यभाषा, काव्य-रूप आदि की चर्चा की गयी है या फिर कृत्तिवास, वाल्मीकि या भास और तुलसीदास आदि की रामकथा पर आधारित कृतियों से " राम की शक्तिपूजा" की तुलना की गई है। डॉ0 दूधनाथ सिंह ने इस तरह की अकादमिक आलोचना पद्धति से अलग हट कर " राम की शक्तिपूजा" को विश्लेषित करने का संकल्प लिया तो एक दूसरी गलती का शिकार हो गये और उसे कवि की अपनी निजी दुनिया से जोड़ दिया। " राम की शक्तिपूजा" जैसी नाटकीय कविता को कवि के अपने ही जीवन से जोड़ना और इस तरह उसे एक तरह से " लिरिकल" कविता (जिसे आलोचना की दुनिया में दोयम दर्जे की कविता माना जाता है) बना देना निराला के साथ अन्याय करना होगा। दूधनाथ सिंह लिखते हैं : "दरअसल मुझे बराबर लगता है कि निराला ने राम के संशय, उनकी खिन्नता, उनके संघर्ष और अंततः उनके द्वारा शक्ति की मौलिक कल्पना और साधना तथा अंतिम विजय में अपने ही रचनात्मक जीवन और व्यक्तिगतता के संशय, अपनी रचनाओं के निरंतर विरोध से उत्पन्न आंतरिक खिन्नता, फिर अपने संघर्ष, अपनी प्रतिभा के अभ्यास, अध्ययन और कल्पना-ऊर्जा द्वारा एक नयी शक्ति के रूप में उपलब्ध और प्रदर्शित करके अंततः रचनात्मकता की विजय का घोष ही इस कविता में व्यक्त किया है। वही स्वयं " पुरुषोत्तम नवीन" हैं। " (निराला : आत्महंता आस्था, पृ0 116)

निराला ही नहीं, किसी भी कवि की संश्लिष्ट और महान रचना उसके जीवन की प्रतीक कथा या उल्था नहीं होती, यह सत्य मनोविश्लेषणशास्त्र के तमाम शोधों से प्रमाणित हो चुका है। मगर हिंदी के

आलोचक अभी तक इस गलत आलोचनात्मक पद्धति से अपना पीछा नहीं छुड़ा पा रहे हैं। फ्रांसीसी चिंतक रोलां बार्थ ने 1964 में छपी अपनी पुस्तक "आलोचनात्मक निबंध" में ठीक ही कहा था कि "यह आलोचनात्मक पद्धति फ्रांस की प्राध्यापकीय आलोचना में ही नहीं, विश्व के दूसरे देशों में भी अभी तक मौजूद है।" हमारी हिंदी आलोचना में तो यह पद्धति बुरी तरह घर किये हुए है। हिंदी आलोचना के विकास के लिए यह ज़रुरी है कि कवि के जीवन से उसकी कविता को जोड़ देने की अवैज्ञानिक पद्धति से छुटकारा पाया जाये। किसी भी कविता को एक वस्तुगत कृति के रूप में उसके देश, काल, समाज और उस विधा के अपने स्वायत्त विकास तथा सौंदर्यशास्त्रीय योगदान के संदर्भों में ही व्याख्यायित किया जाये, उसमें कवि की निजी ज़िंदगी ढूँढ़ निकालने और उसके हर मोड़ और रचनात्मक कोण को उसके " निजत्व" में सीमित कर देने की कोशिश से बचने की शुरुआत की जाये।

इस इकाई में हमने उपर्युक्त सीमाओं से अलग हटकर "राम की शक्तिपूजा" के एक वस्तुगत विश्लेषण का प्रयास किया है। किसी भी कृति को उसके युग से, युग के वैचारिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक दबावों से हट के नहीं समझा जा सकता। इसलिए "राम की शक्तिपूजा" को उसके ऐतिहासिक संदर्भ में रखकर हमने सर्वप्रथम कविता के संवेदनात्मक उद्देश्य की पड़ताल की है। तदुपरांत हमने कविता के पाठावलोकन की प्रक्रिया से गुज़रते हुए "राम की शक्तिपूजा" की बहुस्तरीय अर्थपरतों को खोलने का प्रयास किया है। इसके बाद इस कविता के काव्यरूप के प्रश्न पर भी हमने विचार किया है। अक्सर इस कविता को "महाकाव्य", "खण्डकाव्य", "लम्बी कविता" कह दिया जाता है। ऐसा कहने का आधार क्या है ? और वास्तव में काव्यरूप की दृष्टि से यह कविता क्या है ? मिथकीय ढाँचे में बंधी इस कविता के काव्यरूप की दृष्टि से प्रयोगात्मक पहलू पर भी इस इकाई में हमने विचार किया है। अंत में कविता के संरचनात्मक सौंदर्य पर भी विचार किया गया है। तो आइये "राम की शक्तिपूजा" के ऐतिहासिक संदर्भ को समझने से शुरुआत करें।

8.2 राम की शक्तिपूजा का ऐतिहासिक संदर्भ

निराला के युग में भारतीय समाज की संरचना का सारतत्व क्या है ? उन्नीसवीं सदी के अंत में भारत में दो नये वर्गों का उदय हुआ था, ये नये वर्ग थे : औद्योगिक पूँजीपति और उनके तहत काम करने वाला मजदूरवर्ग। देश पर राज्य करने वाले ब्रिटिश पूंजीपति पूरे भारतीय समाज का शोषण कर रहे थे, इसलिए भारतीय समाज का टकराव ब्रिटिश पूंजीपति वर्ग और उनकी राजसत्ता से होना ही था। निराला के समय में भारतीय समाज और ब्रिटिश साम्राज्यवाद के बीच का युद्ध और अधिक तीव्र होता जा रहा था। इस दौर में इस युद्ध में भारतीय समाज का नेतृत्व यहाँ का उदीयमान पूंजीपति वर्ग कर रहा था क्योंकि यह ऐतिहासिक जिम्मेदारी कई कारणों से इसी वर्ग के कंधों पर आ गई थी, इसे अपने विकास के लिए यहाँ का बाज़ार मुक्त कराना था जो कि उस समय तक ब्रिटिश पूंजीपतियों के हाथों में था। कांग्रेस पार्टी भारतीय पूंजीपतिवर्ग की ही हितसाधक पार्टी थी, किंतु स्वाधीनता की लड़ाई में विजय हासिल करने के लिए पूरे भारतीय समाज की एकता ज़रूरी थी, इसलिए पूंजीपति नेतृत्व के लिए यह ज़रूरी था, वह पूरे राष्ट्र की मुक्ति की बात करे और सभी के हितों का प्रतिनिधित्व करने का दावा करे। "राम की शक्तिपूजा" जिस दौर में लिखी गयी थी, उस दौर में पूंजीपतिवर्ग के साथ ही यहाँ का मजदूरवर्ग भी राजनीति में कूद चुका था, उस वर्ग ने भी अपनी राजनीतिक पार्टी जो कि हर देश में कम्युनिस्ट पार्टी के रूप में वजूद में आती ही है, भारत में बना ली थी और वह भी भारत के तमाम शोषित जनों को साम्राज्यवाद से मुक्त कराने के लिए संघर्षरत था।

हिंदी साहित्य ही नहीं, अन्य भारतीय भाषाओं का साहित्य भी इन दो उदीयमान नये वर्गों यानी भारतीय पूंजीपति वर्ग और मजदूर वर्ग की विचारधाराओं से और उनके संघर्षों से प्रेरित हो रहा था। हमारे यहाँ भी ग़ौर से देखें तो भारतेंदु हरिश्चन्द्र से लेकर मैथिलीशरण गुप्त और निराला, पंत, प्रसाद, महादेवी वर्मा आदि और फिर प्रगतिवादी साहित्य को इन्हीं वर्गों के विचारों की अनुगूँज से भरा हुआ पायेंगे। "राम की शक्तिपूजा" को इस ऐतिहासिक संदर्भ से काटकर विश्लेषित करना कतई सही नहीं होगा। निराला ने तमाम मिथकीय प्रतीकों को चाहे वह "सरस्वती" का हो या "दुर्गा" का हो या " राम" का हो मातृभूमि की गुलामी से मुक्ति के संवेदनात्मक उद्देश्य से ही अपनी कविताओं में प्रयुक्त किया है। यदि वे मिथकीय प्रयोग सिर्फ मिथकों को ही व्याख्यायित करने के लिए करते या सिर्फ अपनी मनोगत चिंताओं और निजी दुखों या भावनाओं को व्यक्त करने के लिए करते तो ये कविताएं स्थायी महत्व की हो भी नहीं सकती थीं।

8.3 संवेदनात्मक उद्देश्य

"राम की शक्तिपूजा" का संवेदनात्मक उद्देश्य जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, रचना के देश और काल तथा समाज के संदर्भ में ही खोजा जा सकता है और इस प्रक्रिया में ही उसका एक नया आलोचनात्मक विमर्श भी तैयार होता है। रचना का अभिधात्मक पाठ यह बताता है कि राम और रावण के बीच एक समर चल रहा है, इस समर में राम को लगता है "मित्रवर, विजय होगी न समर" । इसकी वजह क्या है? इसकी वजह यह है कि शक्ति-संतुलन रावण के पक्ष में है, "अन्याय जिधर, है उधर शक्ति।" कविता यह भी संकेत देती है कि यह समर किसके लिए लड़ा जा रहा है, "जानकी ! हाय उद्धार प्रिया का हो न सका !" यह लड़ाई प्रिया की मुक्ति की लड़ाई है। इस लड़ाई में "विजय" तब तक संभव नहीं जब तक शक्ति-संतुलन रावण के पक्ष में है। "अन्याय" को तब तक परास्त नहीं किया जा सकता जब तक शक्ति-संतुलन न्याय के पक्ष में न हो जाये। यह सामरिक रणनीति का सार्वभौमिक सत्य है। यह कविता अपने देश और काल के संदर्भ में भारत की मुक्ति की लड़ाई से जुड़ जाती है क्योंकि इसमें जिस शक्ति की प्रतीकात्मक पूजा है, वह अपने स्वरूप में भारतमाता की छवि है, असल में वह प्रतीकात्मक रूप में भारत की जनशक्ति है जिसे न्याय के पक्ष में होना है। संपूर्ण भारत की जनशक्ति यदि ब्रिटिश साम्राज्यवाद रूपी रावण के विरुद्ध खड़ी हो जाती है, तो उसी क्षण "विजय" की आशा बलवती हो जाती। इस तरह "राम की शक्तिपूजा" भारतभूमि की मुक्ति की लड़ाई की एक फैंटेसी है, जिसमें जनशक्ति की प्रमुख भूमिका को रेखांकित किया गया है।

8.3.1 सार्वभौमिकता का तत्व

राम की शक्तिपूजा' में देश, काल और अपने समाज का संदर्भ तो है ही, उसमें एक सार्वभौमिक सत्य भी छिपा है। हर बड़ी रचना के पीछे एक सार्वभौमिक सत्य भी होता है जो उसे अपने देश और काल से अतिक्रमित करा के बार-बार प्रासंगिक बनाता है। यह कविता इस मिथ्या चेतना को तोड़ती है कि कोई अवतारी देवता हमें मुक्ति दिलाता है, 'संभवामि युगे युगे' का उद्घोष एक झूठ है, सच्चाई यह है कि शोषित जनशक्ति ही संगठित हो कर अन्याय पर आधारित समाज व्यवस्था से मुक्ति दिलाती है और उसकी एक ऐतिहासिक प्रक्रिया है। समाज के विकास में यह प्रक्रिया घटित होती है। जब शक्ति संतुलन अन्यायपूर्ण व्यवस्था के पक्ष में होता है तो अन्याय की विजय होती रहती है और जब यह शक्तिसंतुलन न्याय की शक्तियों के पक्ष में होता है तो अन्याय से मुक्ति मिल जाती है। योरप में फ्रांस की क्रांति (1789) के वक्त यह सार्वभौमिक सत्य सामने आ गया था। उस समय योरप में सामंतवाद एक अन्यायपूर्ण व्यवस्था बनाये रखने वाला शासकवर्ग था, उभरते हुए पूंजीवाद समेत बाकी सभी वर्ग उसके अधीन रह कर समाज को आगे विकसित नहीं कर सकते थे, इसलिए उस अन्यायपूर्ण सामंती व्यवस्था के खिलाफ पूंजीवाद के नेतृत्व में समाज के अन्य सभी शोषित एकजुट हो गये और 'समानता, स्वतंत्रता, बंधुत्व' के नये मानवीय मूल्यों के उद्घोष के साथ अन्यायपूर्ण व्यवस्था को खत्म कर दिया, मगर पूंजीवाद ने शासक बन कर इन मानवीय मूल्यों का फिर ध्वंस करना शुरू कर दिया, इसलिए इससे भी मुक्ति के प्रयास शुरू हुए। पेरिस कम्यून के ऐतिहासिक संघर्ष को इस प्रयास का ही एक रूप माना जाता है। पूंजीवाद से मुक्ति की ऐतिहासिक जिम्मेदारी मज़दूरवर्ग पर है क्योंकि सीधे-सीधे पूंजीवादी शोषण का एहसास उसी को है। इसीलिए उसने अपने मुक्ति के प्रयासों के दौरान सबसे अधिक क्रांतिकारी विचारधारा और वैज्ञानिक दर्शन- मार्क्सवाद को जन्म दिया। यह दर्शन ही यह बताता है कि मात्रात्मक परिवर्तन एक स्तर पर पहुँचकर गुणात्मक परिवर्तन बन जाता है। समाज व्यवस्थाएं भी इसी प्रक्रिया से परिवर्तित होती हैं। हमारी आज़ादी की लड़ाई में भी यही प्रक्रिया घटित हो रही थी। ब्रिटिश शासक रूपी रावण के पक्ष में बहुत समय तक भारत की जनशक्ति रही, किंतु धीरे-धीरे भारतीय पूंजीपति के उदय के साथ यह जनशक्ति 'राष्ट्रवाद' की नयी विचारधारा के प्रभाव में आकर 'स्वतंत्रता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है' की चेतना तक पहुँची। जैसे-जैसे जनशक्ति के बड़े हिस्से इस संघर्ष के साथ जुड़ते गये मुक्तिसंग्राम में विजय की आशा भी बलवती होती गयी। 'राम की शक्तिपूजा' इसी सार्वभौमिक सत्य को एक मिथकीय आख्यान के माध्यम से अभिव्यक्त करती है। इस सार्वभौमिक सत्य को रूस की क्रांति, चीनी क्रांति, वियतनाम की क्रांति आदि में भी देखा जा सकता है कि जब जनशक्ति नेतृत्व के साथ हो कर नया संतुलन बना देती है तो समर में विजय अवश्य होती है। जब तक यह जनशक्ति अन्याय की ताकतों का साथ भ्रमवश देती रहती है, मुक्तिकामी वर्गों का साथ नहीं देती, तब तक मुक्ति की ताकतों को शिकस्त मिलती है, तब तक 'रह रह उठता जग जीवन में रावण-जय-भय।'

8.4 कविता का पाठावलोकन

"राम की शक्तिपूजा" का पाठालोकन कई तरह के भाष्यों की गुंजाइश देता है। इसकी वजह यह है कि यह कविता अपनी संरचना में काफी संश्लिष्ट है, उसमें कविता के अनेक स्तरीय उपादानों का कलात्मक प्रयोग किया गया है। उसे मिथ, प्रतीक, बिंब, छंद, अलंकार और ध्वन्यात्मकता आदि उपकरणों से सजाया गया है और मुक्तिकामी विचारधारा की आँच से प्राणवान बनाया गया है। इस कविता के सार्थक आलोचनात्मक विमर्श के लिए इसके दो केंद्रीय बिंबों पर ध्यान देना ज़रूरी है। ये बिंब हैं, "ज्योति" और "नयन" । कविता की शुरुआत "रवि हुआ अस्त/ज्योति के पत्र" से होती है और फिर इस "ज्योति के पत्र" पर लिखे "आज" के समर का वर्णन होता है जिसके केंद्र में "विच्छुरित - वहिन - राजीवनयन" एक ओर हैं, तो दूसरी ओर "लोहित लोचन रावण" है। राम की आँखों में अग्नि है, रावण की आंखों में लहू। एक दिन के इस युद्ध-वर्णन के बाद शाम गहराती है, "उतरा ज्यों दुर्गम पर्वत पर नैशांधकार/चमकती दूर ताराएं ज्यों हों कहीं पार" । यह नैशांधकार भी ज्योति के अभाव का ही दूसरा रूप है। इस अंधकार में दूर कहीं ताराएं चमक रही हैं। ज्योति पूरी तरह नदारद नहीं है, आशा की किरण समाप्त नहीं है। इसी तरह इस मुक्तिसंग्राम में तात्कालिक सफलता न मिलने की मनोदशा का चित्रण भी बिंबों के माध्यम से किया गया है। चारों ओर अंधेरा है, मगर कहीं न कहीं आशा की ज्योति भी जल रही है :

है अमा निशा, उगलता गगन घन अंधकार।
खो रहा दिशा का ज्ञान, स्तब्ध है पवन चार।
अप्रतिहत गरज रहा पीछे अंबुधि विशाल,
भूधर ज्यों ध्यानमग्न, केवल जलती मशाल।

विश्व साहित्य में प्रकाश को ज्ञान के लिए प्रयुक्त किया गया है। "तमसो मा ज्योतिर्गमय" की प्रार्थना के समय से हमारे यहाँ भी प्रकाश को इसी अर्थ में लिया जाता रहा है। इस कविता में प्रकाश के बिंब में मात्रात्मक परिवर्तन भी एक अर्थ ध्वनित करता चलता है। "नैशांधकार" में "चमकती दूर ताराएं" प्रकाश की झीनी किरण हैं, ये शायद मुक्ति की आशा लगाये सीता की आंखें हैं, लेकिन मात्रात्मक रूप में अंधकार ज्यादा है, इसी तरह " गगन घन अंधकार" में "केवल जलती मशाल" भी मात्रात्मक रूप में बहुत बड़ी ज्योति नहीं है। अंधकार और प्रकाश के इस युद्ध में प्रकाश कमज़ोर ज़रूर है। अपनी प्रिया की मुक्ति का विचार ही वह प्रेरक प्रकाश है जो मन को दीप्त करता है :

ऐसे क्षण अंधकार घन में जैसे विद्युत
जागी पृथ्वी-तनया-कुमारिका-छवि, अच्युत

प्रकाश के इस बिंब के साथ ही "नयन" का यानी दृष्टि का बिंब भी आ जाता है। प्रकाश हो भी और यदि "नयन" न हों तो प्रकाश का अस्तित्व सार्थक नहीं हो सकता। यह सत्य है कि मुक्ति के संघर्ष में ज्ञान होते हुए भी यदि दृष्टि नहीं तो सारा संघर्ष निष्फल हो जाता है। इतिहास में इसके उदाहरण मौजूद हैं। इसलिए मुक्ति के समर में जीत हासिल करने के लिए वैज्ञानिक और तर्कसंगत देश और काल सापेक्ष दृष्टि की अहम भूमिका होती है। मुक्ति समर की इस कविता में इसीलिए इन दोनों बिंबों यानी "प्रकाश" और "नयन" का विशेष महत्व है।

दृष्टि अर्जित करने के लिए अतीत का विश्लेषण अक्सर किया जाता है। इस कविता में भी वर्तमान से अतीत की ओर और अतीत से वर्तमान की ओर बार-बार लौटा जाता है, तब अंत में भविष्य की रूपरेखा तय होती है। प्रारंभ निकट अतीत "आज" का समर के विश्लेषण से ही होता है, उसके बाद वर्तमान क्षण के अंधकार और उसमें झीने प्रकाश का चित्रण होता है, और फिर अतीत की ओर लौटने की प्रक्रिया शुरू होती है: "याद आया उपवन/विदेह का" इस अतीत में "**नयनों** का नयनों से गोपन" भी याद आता है और इस अतीत में ही "**ज्योतिः**प्रपात स्वर्गीय-ज्ञात छवि प्रथम स्वीय/जानकी **नयन** कमनीय" की स्मृति भी आती है। इस सुदूर अतीत में दिखायी दे रहे "जानकी नयन" राम को वर्तमान तक ले आते हैं, आज का रण सामने आ जाता है, जिसमें वे देखते हैं कि भीमाकार शक्ति रावण के पक्ष में युद्ध भूमि को आच्छादित किये हुए है और उसको सुरक्षा प्रदान कर रही है :

फिर देखी भीमा मूर्ति, आज रण देखी जो
आच्छादित किये हुए सम्मुख समग्र नभ को

ज्योतिर्मय अस्त्रसकल बुझ बुझकर हुए क्षीण
पा महानिलय उस तन में क्षण में हुए लीन

इस परिस्थिति में रावण पर विजय पाना आसान नहीं, शक्ति संतुलन उसके पक्ष में है। इस शंकाकुल स्थिति में "खिंच गये दृगों में सीता के राममय नयन।" और फिर "भावित नयनों से सजल गिरे दो मुक्ता दल।" हनुमान ने उन नयनों को देखा, "देखा कपि ने, चमके नभ में ज्यों तारा दल" । "बैठे वे वही कमल लोचन, पर सजल नयन/व्याकुल व्याकुल कुछ चिर प्रफुल्ल मुख निश्चेतन।" राम की ऐसी व्याकुल स्थिति देख कर हनुमान पंचतत्वों को समन्वित करके उस महाशक्ति से टक्कर लेने के लिए महाकाश में पहुँचते हैं जो रावण को सुरक्षा प्रदान किये हुए है :

तोड़ता बंध - प्रतिसंध धरा.....
शत वायु वेग बल, डुबा अतल में देश भाव
जल राशि विपुल मथ मिला अनिल में महाराव
वज्रांग तेजघन बना पवन को, महाकाश
पहुँचा, एकादश रुद्र क्षुब्ध कर अट्टहास।

यहाँ "धरा", "वायु", "जल", "तेज" और "आकाश" पंचतत्व हैं, इन्हें समन्वित करके बलशाली बना कपि उस समस्त आकाश को ही निगलने के लिए आगे बढ़ा, जिसमें रावण की पक्षधर शक्ति छायी हुई है, "करने को ग्रस्त समस्त व्योम कपि बढ़ा अटल।"

रावण की पक्षधर शक्ति को "श्यामा विभावरी, अंधकार" कहा गया है, जाहिर है कि अज्ञान के अंधकार में डूबी जनशक्ति ही अन्याय का जाने अनजाने पक्ष लेती है। जर्मनी में हिटलर हो या पूँजीवादी देशों में लोकतंत्र की आड़ में शोषकों का वर्चस्व हो इसी जनशक्ति के पक्ष लेने के कारण सत्ता में रहते हैं। न्याय के पक्ष को जिसका प्रतिनिधित्व इस कविता में राम करते हैं हारते हुए देखकर जो कपि विचलित हो रहा है उसे "रुद्र राम पूजन प्रताप तेजःप्रसार" कहा गया है जो कि ज्योति का ही एक रूप है। पंचतत्वों पर विजय विज्ञान कर रहा है और यह विज्ञान भी समर में काम आ रहा है। आज तो विज्ञान का दुरुपयोग संपूर्ण पृथ्वी का संहार कर सकता है, निराला के समय में भी इस विज्ञान की युद्ध सामग्री का जनविनाशकारी रूप कुछ हद तक सामने आ चुका था। भारत की मुक्ति की लड़ाई में इस जनविनाशकारी रास्ते को वरेण्य नहीं माना गया था। इसीलिए शिव अपनी दुर्गा को अंजनीरूप धारण करने को कहते हैं और बताते हैं कि "विद्या का ले आश्रय इस मन को दो प्रबोध।" अंजनीरूपा शक्ति हनुमान को डांटती है और पूछती है कि "क्या दी आज्ञा ऐसी कुछ श्री रघुनंदन ने ?" नेतृत्व से अलग हट कर मनमाने तरीके से किया जाने वाला दुस्साहस किसी भी रण में नुकसानदेह होता है। संघर्ष सामूहिक समझ से लड़कर ही जीता जा सकता है, एक-एक व्यक्ति के अपने-अपने निर्णय से नहीं। हनुमान के पुनः सामान्य होने पर सामूहिक समझ बनाने की प्रक्रिया शुरू होती है। राम के उदास मुंह को देखकर विभीषण अपनी बात कहते हैं और राम को उकसाते हैं। राम पर उनके शब्दों का कोई असर नहीं होता। "सब सभा रही निस्तब्ध, राम के स्तिमित **नयन**" । फिर राम बताते हैं कि :

यह नहीं रहा नर वानर का राक्षस से रण
उतरीं पा महाशक्ति रावण से आमंत्रण।
अन्याय जिधर है उधर शक्ति। कहते छल-छल
हो गये **नयन**, कुछ बूंद पुनः ढलके दृग जल।

निराला बार-बार "नयन" का बिंब लाते हैं। राम के नयन में दृगजल झलक रहा है। वे बताते हैं कि सत्य और न्याय का पक्ष लेने पर भी वे शक्ति के लिए पराये हो गये और अधर्मरत रावण को वह शक्ति अपने अंक में लिये हुए है :

देखा, है महाशक्ति रावण को लिये अंक
लांक्षन को ले जैसे शशांक नभ में अशंक
.....
विचलित लख कपिदल क्रुद्ध युद्ध को मैं ज्यों ज्यों
झक झक झलकती वह्नि वामा के **दृग** त्यों त्यों

वामा के नयनों में आग जलती दिखायी दे रही हो, तो राम का " त्रस्त" होना स्वाभाविक ही है। राम शक्ति के इस खेल का रहस्योद्घाटन अपनी सेना के सामने कर देते हैं। जाम्बवान राम को इसका उपाय सुझाते हैं :

विचलित होने का नहीं देखता मैं कारण
हे पुरुषसिंह, तुम भी यह शक्ति करो धारण
.....
शक्ति की करो मौलिक कल्पना, करो पूजन
छोड़ दो समर जब तक न सिद्धि हो, रघुनंदन।

"शक्ति की.....मौलिक कल्पना" में ही इस कविता का प्रतीकार्थ खुलता है। यह परंपरागत दुर्गा या पार्वती या काली की पूजा का आख्यान नहीं है। यह कविता अपने प्रतीकार्थ में भारत के स्वाधीनता संग्राम की रणनीति की कविता है। यह पूजा उस जनशक्ति को अपने पक्ष में करने का उद्यम है जिसको साथ लिये बगैर कोई भी मुक्तिकामी नेतृत्व लड़ाई जीत नहीं सकता। फ्रांस की पूंजीवादी क्रांति हो, या रूस की अक्टूबर क्रांति या चीन और वियतनाम के मुक्तिसंग्राम या भारत की आज़ादी की लड़ाई हो इनमें विजय उसी बिंदु पर संभव हुई जब वर्गों का संतुलन मुक्ति की ताकतों के पक्ष में हो गया। कोई एक व्यक्ति चाहे वह अवतारी पुरुष ही क्यों न हो अकेले या जनशक्ति को अपने पक्ष में किये बगैर सत्ता हासिल नहीं कर सकता है। इसीलिए शोषक वर्गों के नेता और उनके दल भी अविद्या फैलाकर या झूठे वायदे करके इसी जनशक्ति को भरमाये रहते हैं और अपने पक्ष में किये रहते हैं और इस तरह सत्ता पर कब्जा किये रहते हैं। भारत और विश्व के अन्य तमाम पूंजीवादी देशों में पूंजीपतियों की पार्टियां अन्य तमाम वर्गों को इसी तरह अविद्या और अज्ञान के मायाजाल में फंसा कर और झूठे वायदे करके सत्ता में बनी रहती हैं और जब जनता एक पार्टी के झूठ को जान जाती है तो पूंजीपतियों की ही दूसरी पार्टी उसी जनशक्ति के समर्थन से सत्ता में आ जाती है और इस तरह शोषण का क्रम इन देशों में चलता रहता है। इस शोषण से मुक्ति सिर्फ सर्वहारावर्ग ही दिला सकता है किंतु समाज की पूरी शोषित जनशक्ति जब तक उसका साथ नहीं देती, तब तक शोषण पर आधारित समाज की मुक्ति भी शोषण व्यवस्था से नहीं हो पाती। "शक्ति की मौलिक कल्पना" का यही अर्थ है कि मुक्तिकामी नेतृत्व को भारत की जनशक्ति की आराधना करके उसे अपने पक्ष में करना होगा। प्रतीकात्मक स्तर पर " राम की शक्तिपूजा" में यही प्रक्रिया घटित की जाती है। राम इस रणनीतिक समझ को वृद्ध जाम्बवान से हासिल करते हैं तो निराशा दूर होती है और उनके नेत्र खुल जाते हैं :

कुछ समय अनंतर इंदीवर निंदित **लोचन**
खुल गये, रहा निष्पलक भाव मे मज्जित मन
बोले आवेग रहित स्वर से विश्वास स्थित
मातः, दशभुजा, विश्व**ज्योतिः**, मैं हूँ आश्रित.....

इस वैज्ञानिक सोच पर आधारित रणनीति के प्रकाश में आ जाने पर वाचक राम से जनशक्ति को "विश्वज्योति" के रूप में संबोधित करवाता है। राम के "लोचन" खुल गये।

यह नयी दृष्टि मध्ययुगीन दृष्टि से बिल्कुल भिन्न है। आज भी अज्ञानवश बहुत से लोग यह समझते हैं कि कोई अवतारी पुरुष नेतृत्व में आ जाये तो सभी दुखों और क्लेशों से उनकी मुक्ति हो सकती है। यह व्यक्तिकेंद्रित दृष्टिकोण अवैज्ञानिक और मिथ्याचेतना पर आधारित है। एक शोषणपरक व्यवस्था से मुक्ति तभी संभव है जब ऐतिहासिक रूप से नयी व्यवस्था को जन्म देने वाली शक्तियाँ सामाजिक वर्गों के बहुसंख्यक हिस्सों को अपने पक्ष में कर लें। मसलन, दास व्यवस्था से मुक्ति के लिए सामंतवाद ऐतिहासिक भूमिका अदा करता है लेकिन पूरे समाज को अपने पक्ष में करके ही यह संभव हो सकता है, इसी तरह सामंतवाद से मुक्ति का ऐतिहासिक दायित्व पूंजीपति वर्ग पर है,, लेकिन उसे भी शक्तिसंतुलन अपने पक्ष में करना होता है। विश्वपूंजीवाद जब साम्राज्यवाद की अवस्था में पहुंच कर दूसरे देशों को पराधीन बना लेता है तो राष्ट्रीय मुक्ति का दायित्व उस देश में उपजे राष्ट्रीय पूंजीपतिवर्ग पर या उस वर्ग के कमज़ोर होने पर वहाँ के नवोदित मजदूर सर्वहारा वर्ग पर आ जाता है लेकिन उसे भी विजय तभी मिल सकती है जब पूरे राष्ट्र की जनशक्ति उसके साथ एकजुट खड़ी हो, जैसा कि राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलनों का इतिहास सिद्ध करता है। निराला ने यह कविता 1936 में लिखी थी, लेकिन इसमें दी गयी रणनीति से ही हमें आज़ादी मिली, किसी एक व्यक्ति की चमत्कारी शक्ति से नहीं। इस अर्थ में यह कविता एक "प्रोफेटिक" रचना है।

इस कविता में "नयन" और "ज्योति" के बिंबों का जो पैटर्न है वह भी इसी प्रतीकार्थ को खोलता चलता है। कविता के पूर्वार्द्ध में "रावण जय भय" की आशंका और सीता की मुक्ति के अभियान में सफलता न मिलने से पैदा होने वाली निराशा के लिए कवि ने "अंधकार" के बिंब का प्रयोग किया और झीनी आशा के लिए "ज्योति" के बिंब साथ-साथ रचे। "नयन" के साथ भी यही हुआ, राम के "नयन" निराशा के क्षणों में बार-बार "सजल" हुए। मगर जब जाम्बवान द्वारा सही वैज्ञानिक रणनीति सामने लायी गयी तो "खिल गयी सभा", राम के "इंदीवर निंदित लोचन खुल गये।" शक्ति की मौलिक कल्पना का इंगित पा कर मुक्त होने पर वे शक्ति का प्रतीक खोलते हैं। यह तस्वीर भारत की तस्वीर है जिसे राम अपने "बंधुवर" यानी सेनापतियों आदि को समझाते हैं। यहाँ राम "चंद्रमुखनिंदित रामचंद्र" हैं, "अमा निशा में बैठे "विषण्णानन" राम नहीं। इसी अवस्था में "अमा निशा" और "घन अंधकार" का अंत हो जाता है :

निशि हुई विगत, नभ के ललाट पर प्रथम किरण
फूटी रघुनंदन के **दृग** महिमा-**ज्योति**-हिरण

राम शक्ति की मौलिक आराधना करते हैं, इस आराधना के लिए राम ने शक्ति का जो रूप कल्पना में निर्मित किया है, वह स्पष्टतः भारतमाता का रूप है। वे अपने साथियों को बताते हैं :

देखो, बंधुवर, सामने स्थित जो वह भूधर
शोभित शत-हरित-गुल्म-तृण से श्यामल सुंदर
पार्वती कल्पना हैं इसकी मकरंद-बिंदु
गरजता चरण-प्रांत पर सिंह वह नहीं सिंधु
दशदिक्-समस्त हैं हस्त, और देखो ऊपर
अंबर में हुए दिगंबर अर्चित शशि शेखर

यह वर्णन "भारति, जय विजय करे" में वर्णित मातृभूमि के चित्र से काफी मिलता जुलता है। इस भारत भूमि की जनशक्ति को समर्पित हो कर ही कोई मुक्तिकामी नेतृत्व विजय हासिल कर सकता है। गांधीजी ने भी सबसे पहले इस पूरी भारत भूमि का दौरा किया था और इस शक्ति को पहचानने का पहला काम किया था, और फिर उसी शक्ति का मौलिक आराधन किया था। अमरीका में लिंकन ने, रूस में लेनिन ने, चीन में माओ ने, वियतनाम में हो ची मिन्ह ने, क्यूबा में फिदेल कास्त्रो ने इसी जनशक्ति की मौलिक आराधना की थी, इस जनशक्ति के लिए बड़ी से बड़ी कुर्बानी देने को ये क्रांतिकारी तैयार थे, अपने-अपने देशों के मुक्ति समर में विजयी भी तभी हुए जब इस जनशक्ति ने उन्हें अपना बना लिया। "राम की शक्तिपूजा" में यही वैज्ञानिक रणनीतिक सार्वभौमिक सत्य मिथकीय रूप धारण करके आया है। कविता में राम हनुमान से 108 या उससे भी ज्यादा कमल लाने को कहते हैं, जिन्हें चढ़ाकर राम शक्ति की पूजा करेंगे।

राम ने शक्ति की पूजा शुरू की, "कर जप पूरा कर एक चढ़ाते इंदीवर" जब पूजा की प्रक्रिया पूरी होने जा रही थी, कि तभी दुर्गा अंतिम कमल उठा लें गयीं, हर एक साधना में परीक्षा होती है, राम की साधना की भी परीक्षा होनी ही थी। देवी पर कमल चढ़ाने का उपाय राम को सूझ गया :

"यह है उपाय" कह उठे राम ज्यों मंद्रित घन
"कहती थीं माता मुझे सदा राजीव-**नयन**
दो नील-कमल हैं शेष अभी, यह पुरश्चरण
पूरा करता हूँ देकर मातः एक **नयन**।"

जैसा कि कहा जा चुका है, इस कविता का केंद्रीय बिंब "नयन" है और भावनानुकूल "ज्योति" का भी बिंब प्रयुक्त हुआ है, ये दोनों बिंब अन्योन्याश्रित भी हैं। इसीलिए राम का मन जैसे ही समाधान खोजने के लिए कृतसंकल्प होता है वहाँ ज्योति के बिंब का इस्तेमाल होता है। राम का मन "बुद्धि के दुर्ग पहुंचा विद्युत-गति हतचेतन/राम में जगी स्मृति, हुए सजग पा भाव प्रमन।" यहाँ "विद्युत गति" के द्वारा ज्योति के बिंब की उपस्थिति भी दर्ज करायी गयी है, जैसा कि कविता के अन्य अंशों में भी हुआ है।

राम अपने एक "नयन" को बाण से निकालने को उद्यत होते हैं, शक्ति की आराधना के लिए यह बलिदान "सरफरोशी की तमन्ना" की ही तरह है :

ले अस्त्र वाम कर, दक्षिण कर दक्षिण लोचन
ले अर्पित करने को, उद्यत हो गये सुमन

बलिदान की इस भावना से शक्ति राम पर प्रसन्न हो गयीं, उन्होंने प्रकट होकर राम का हाथ थाम लिया। राम ने इस शक्ति को देखा। इस शक्ति को कविता में "ज्योतिर्मय रूप" कहा गया है। इस शक्ति ने राम से कहा, "होगी जय, होगी जय, हे पुरुषोत्तम नवीन!" और यह कहकर "महाशक्ति राम के वदन में हुई लीन!"

जनशक्ति जिस नेतृत्व के पक्ष में हो जाएगी, उसकी विजय होने में संदेह की कोई गुंजाइश नहीं। यह कविता इसी जनशक्ति की पूजा की कविता है। इस सार्वभौमिक सत्य को सड़ी-गली समाज व्यवस्था से मुक्ति की छटपटाहट महसूस करने वाले हर युग के संवेदनशील रचनाकार ने खोजा था। शेक्सपीयर ने "जूलियस सीज़र" नामक अपने नाटक में इसी सत्य की खोज की थी। उसमें साधारण जन की केंद्रीय भूमिका है, रोम की जनशक्ति को अपने पक्ष में करने की कोशिश से ही नाटक की शुरुआत होती है। फ्रांस की 1789 की क्रांति भी इसी सत्य का जीता जागता उदाहरण थी। हमारी आज़ादी की लड़ाई भी इसी सत्य की साक्षी है और भविष्य में शोषकवर्गों से मुक्ति के लिए लड़े जाने वाले निर्णायक समर में भी यही सत्य काम आएगा। इसी सत्य को मुक्तिबोध की कविता, "अंधेरे में" फैंटेसी के माध्यम से बयान करती है, जब उसमें वाचक गांधी जी को देखता है। उसमें गांधीजी वाचक को बताते हैं :

"दुनिया न कचरे का ढेर कि जिस पर
दानों को चुगने चढ़ा हुआ कोई भी कुक्कुट
कोई भी मुर्गा
यदि बांग दे उठे ज़ोरदार
बन जाये मसीहा"

वे कह रहे हैं :

"मिट्टी के लोंदे में किरगीले कण कण
गुण हैं
जनता के गुणों से ही संभव
भावी का उद्भव"

"अंधेरे में" का मध्यवर्गीय वाचक अकेलेपन का और "निस्संगता" का विचार पाले हुए यह सोच रहा था कि उसकी मुक्ति अकेलेपन में ही है जैसा कि आधुनिकतावादी और अस्तित्ववादी चिंतकों और रचनाकारों ने प्रचारित किया हुआ था। नीत्शे की महामानव की अवधारणा भी हमारे यहाँ के अवतारवाद की धारणा जैसी एक मिथ्या धारणा ही थी कि कोई अवतारी पुरुष या कोई डिक्टेटर मुक्ति दिलवा सकता है। मुक्तिबोध ने "अंधेरे में" के वाचक को जीवन-जगत के अनुभवों से गुजारते हुए और आज़ादी के संघर्ष के वैज्ञानिक सत्यों से परिचित कराते हुए इस यथार्थवादी मंजिल तक पहुंचाया कि मुक्ति अकेले में नहीं मिलती और मुक्ति का मसीहा भी हर कोई नहीं बन सकता, "जनता के गुणों से ही संभव/भावी का उद्भव।" यह जनशक्ति जब मुक्तिकामी नेतृत्व के साथ होगी, और जब यह नेतृत्व भी ऐतिहासिक रूप से उत्पन्न नये वर्ग यानी आज की स्थिति में सर्वहारावर्ग का होगा तभी समाज व्यवस्था बदलने में मुक्तिकामी नेतृत्व सक्षम होगा। "राम की शक्तिपूजा" में राम को इसी जनशक्ति का आराधन करना पड़ता है, "अंधेरे में" कविता में मध्यवर्गीय वाचक को भी मुक्ति के लिए अपना "व्यक्तित्वांतरण" करना पड़ता है, उसे सर्वहारावर्ग के साथ अपना तादात्म्य करना पड़ता है, "साथी" खोजने पड़ते हैं :

मुझे अब खोजने होंगे साथी-
काले गुलाब व स्याह सिवंती
श्याम चमेली
संवलाये कमल जो खोहों के जल में

भूमि के भीतर पाताल तल में
खिले हुए कब से भेजते हैं संकेत

ये श्याम वर्ण के सारे फूल सर्वहारा साथी ही हैं जो हर जगह श्रम के कार्यों में लगे हैं और मौजूदा समाज को बदल कर एक शोषणविहीन समाज रचने की क्षमता रखते हैं क्योंकि ऐतिहासिक रूप से यह जिम्मेदारी उन्हीं के कंधों पर है। "राम की शक्तिपूजा" में जनशक्ति नेतृत्व के साथ मिलकर ब्रिटिश साम्राज्यवाद से भारतीय समाज को मुक्त कराती है, "अंधेरे में" की फैंटेसी में जनशक्ति सर्वहारावर्ग के नेतृत्व में होने वाली जनवादी क्रांति में अपना साथ देकर शोषणविहीन समाज बनाने का भविष्य का नक्शा बनाती है।

8.5 काव्य-रूप का सवाल

निराला की कविता "राम की शक्तिपूजा" के सिलसिले में रूपवादी समीक्षकों और अकादमिक हलकों में यह सवाल भी चर्चा का विषय बनता है कि इस कविता का काव्यरूप क्या है, यानी यह कविता क्या एक महाकाव्य है, खंडकाव्य है या कोई नया काव्यरूप है। दर असल, ये सवाल ऐसे आलोचक उठाते हैं जो हर रचना को कहीं न कहीं बंधी बंधायी काव्यशास्त्रीय परंपराओं के चौखटे में फिट करना चाहते हों। वे यह नहीं जानते हैं कि अन्य क्षेत्रों की ही तरह रचना के क्षेत्र में भी विकास होता है, पुराने चौखटे टूटते हैं, नयी संरचनाएँ अस्तित्व में आती हैं और नये काव्यरूप भी बनते हैं। निराला तो हिंदी कविता को पुरानी रूढ़ियों से मुक्त करके "नये" के विधान के लिए कृतसंकल्प थे। वे समाज की मुक्ति से प्रेरित होकर कविता की मुक्ति की भी बात करते थे। उनकी इस मुक्तिकामी विचारधारा को ध्यान में रखें तो इस सवाल का एक ही जवाब होगा कि यह कविता का एक "नया" काव्यरूप है जिसे "लंबी कविता" कहा जा सकता है। रामकथा पर आधारित होने के कारण इस कविता में महाकाव्य के गुण नजर आ जायेंगे, खंडकाव्य की विशेषताएं भी दिखायी दे जायेंगी, मगर इन काव्यरूपों को ध्यान में रखकर इस कविता की रचना की गयी नहीं जान पड़ती।

नये काव्य-रूप हर समाज में पूंजीवाद के उदय के साथ वजूद में आये। "उपन्यास" नामक विधा भी पूंजीवाद के उदयकाल में ही अस्तित्व में आयी। जब पुराने काव्यरूप नये कथ्य को अभिव्यक्त करने में समर्थ नहीं होते तो रचनाकार पुरानी रूढ़ियों को तोड़कर नये समाज के अनुकूल भावाभिव्यक्ति के नये माध्यम तैयार कर लेते हैं। इसी सामाजिक प्रक्रिया से हर देश में नये काव्यरूप और नयी साहित्यिक विधाओं का आविष्कार हुआ। पूंजीवाद के विकास के साथ वैज्ञानिक प्रगति का सिलसिला भी जुड़ा हुआ है। हमारे देश में ब्रिटिश साम्राज्यवाद से मुक्ति के दौर में हर संवेदनशील बुद्धिजीवी के लिए वैज्ञानिक सोच आगे बढ़ाना और नये-नये विचार समाज को देना तथा उन विचारों से समाज और कला का भंडार भरना राष्ट्रीय कर्तव्य बन गया था। हिंदी के रचनाकार भी इसी प्रयास में जुटे थे कि उनकी कल्पनाशक्ति इसी सांस्कृतिक और वैज्ञानिक समृद्धि द्वारा अपने समाज को उन्नत और आधुनिक समाज बना दे। यही वजह है कि "राम की शक्तिपूजा" एक मिथकीय ढांचे में बंधी होने पर भी एक नया प्रयोग है क्योंकि उसकी मूल संवेदना वैज्ञानिक सामरिक रणनीति को पेश करती है, सामाजिक बदलाव की मूल प्रकृति की खोज करती है और उसी कथ्य के मुताबिक एक नया काव्यरूप ईजाद करती है। पश्चिमी देशों में भी पूंजीवाद के उभार के दौर में इसी तरह का नया काव्यरूप अस्तित्व में आया जैसा कि हम वाल्ट व्हिटमैन, वर्डस्वर्थ, कीट्स, शैले आदि की लंबी कविताओं में देखते हैं और इसी दौर मे हमारे अपने देश की अन्य भाषाओं के काव्य में भी उसके उदाहरण मिलते हैं।

8.6 संरचनात्मक सौंदर्य

"राम की शक्तिपूजा" में जहाँ विधागत नवीनता है वहीं इसका संरचनात्मक सौंदर्य भी अनूठा है। एक नाटकीय रचना होने के कारण इसमें वर्णन कौशल, नाद सौंदर्य, भावानुकूल भाषा-प्रयोग और पात्रों का जीवंत कर्म कौशल (एक्शन) या गतिमान चाक्षुस बिंबों का समावेश देखने को मिलता है। इस कविता के रचनात्मक सौंदर्य में भी निराला ने परंपरागत उपादानों के साथ-साथ बहुत सारे नये उपादान प्रयुक्त किये हैं। उदाहरण के तौर पर फ्लैशबैक तकनीक के इस्तेमाल को देखा जा सकता है। इस रचना की कथावस्तु सीधी सपाट नहीं है, उसमें वर्तमान से विगत की ओर और फिर विगत से वर्तमान की ओर आवाज़ाही रहती है और अंत में आगत की ध्वनि या घोष का प्रयोग है। जिस तरह काल के इन तीनों

आयामों से यह रचना क्रीड़ा करती है, उसी तरह "स्थान" के आयाम भी बदलती है। राम अपने वर्तमान में रणभूमि में हैं, मगर स्मृति में वे जनक वाटिका में लौटते हैं : "याद आया उपवन/विदेह का....." । हनुमान भी कई बार स्थान परिवर्तन करते हैं। वे आकाश से लेकर "देवी दह" तक विचरण करते हैं। इस तरह यह रचना आधुनिक चित्रपट शैली की तरह देशकाल के विविध आयामों का इस्तेमाल करती है।

इस कविता के संरचनात्मक सौंदर्य में नादयुक्त भाषिक प्रयोगों का विशेष योगदान है। कविता के प्रारंभिक अंश में जहाँ "राम रावण का अपराजेय समर/आज का" वर्णित है, यह भाषिक नाद सौंदर्य देखने लायक है। इस अंश को गौर से देखें तो "ण" वर्ण से युक्त शब्दों की भरमार मिलेगी, जैसे "तीक्ष्ण", "सम्वरण", "बाण", "रावण", "कारण", "कोदण्ड", "भीषण", "अगणित" आदि। इसी तरह "भ" वर्ण के शब्द भी चुन-चुन कर प्रयुक्त हुए हैं। इन वर्णों से युद्ध के होने का नाद चमत्कार पैदा हुआ है। इसके ठीक विपरीत जानकी स्मृति के प्रकरण में या शिव के कहने से अंजनीरूप में पार्वती का हनुमान को प्रबोधन प्रकरण में इस तरह की ध्वनियों का अभाव है। देखिए :

बोली माता- "तुमने रवि को जब लिया निगल
तब नहीं बोध था तुम्हें, रहे बालक केवल
यह वही भाव कर रहा तुम्हें व्याकुल रह रह,
यह लज्जा की है बात कि मां रहती सह सह,
यह महाकाश, है जहाँ वास शिव का निर्मल-
पूजते जिन्हें श्रीराम उसे ग्रसने को चल,
क्या नहीं कर रहे तुम अनर्थ ? -- सोचो मन में,
क्या दी आज्ञा ऐसी कुछ श्री रघुनंदन ने ?
तुम सेवक हो, छोड़कर धर्म कर रहे कार्य-
क्या असंभाव्य हो यह राघव के लिए धार्य ?"
उक्त पूरे प्रबोधन में कहीं भी "ण" वर्ण का प्रयोग नहीं है।

इस तरह का वैविध्य जो कि भावानुकूल है शैली के स्तर पर भी देखने को मिलता है। राम-रावण का अपराजेय समर जहाँ वर्णित है वहाँ समासयुक्त पदावली या समस्त पदावली का प्रयोग है। शुद्ध संस्कृतनिष्ठ पदावली और समासों से बोझिल, युद्ध का नाद सजीव करती हुई पदावली उस अंश में प्रयुक्त हुई है जबकि उस अंश के समाप्त होते ही शैली बदल जाती है। सरल शब्दावली जिसे ध्वनि बिंबों के स्थान पर चाक्षुष बिंबों से सजाया गया है प्रयोग में लायी गयी है :

है अमा निशा, उगलता गगन घन अंधकार
खो रहा दिशा का ज्ञान, स्तब्ध है पवन चार
अप्रतिहत गरज रहा पीछे अंबुधि विशाल
भूधर त्यों ध्यान मग्न, केवल जलती मशाल।

8.7 सारांश

इस तरह हम देखते हैं कि "राम की शक्तिपूजा" अपने पूरे कलात्मक सौंदर्य के साथ अपने युग के सामाजिक सत्य से जुड़ती हुई एक सार्वभौमिक प्रक्रिया का बयान करती है जिसे असत्य के ऊपर सत्य की विजय के लिए हर बार अपनाना पड़ेगा। स्वाधीनता का पक्ष सत्य का पक्ष था, ब्रिटिश साम्राज्यवाद का पक्ष असत्य का पक्ष था, उस असत्य के खिलाफ विजय तभी हासिल हुई जब भारत की जनशक्ति नेतृत्व के साथ हो गयी। भविष्य में भी जब शोषण पर आधारित व्यवस्था को बदलकर शोषणविहीन समाज बनाने का समर तेज होगा, उसकी विजय भी तभी सुनिश्चित होगी जब भारत की या किसी ऐसे समाज की जनशक्ति उदीयमान सर्वहारावर्ग के वैचारिक-राजनीतिक नेतृत्व के साथ होगी और वर्गीय संतुलन क्रांतिकारी सर्वहारावर्ग के पक्ष में हो जाएगा। जब तक शोषित जनता बड़े पूंजीपतियों-भूस्वामियों के राजनीतिक-वैचारिक नेतृत्व के चंगुल में फंसी रहेगी यानी असत्य की गोद में रहेगी, तब तक शोषणविहीन समाज बनाने वाली शक्तियों की विजय संभव नहीं। इसलिए सर्वहारा वर्ग को भी शक्तिपूजा की मौलिक कल्पना करनी पड़ती है। सारी क्रांतियों का इतिहास इस बात का साक्षी है। "राम की शक्तिपूजा" इसी ऐतिहासिक अनुभव को काव्यात्मक स्तर पर प्रस्तुत करती है। संवेदनात्मक स्तर पर समाहित यह सार्वभौमिक सत्य ही इस रचना को महान बनाता है, इसी तत्व की वजह से यह

कविता एक इल्हामी या प्रोफेटिक कविता भी बन जाती है। निराला की यह कविता हिंदी साहित्य की श्रेष्ठतम रचनाओं में से एक है।

8.8 प्रश्न

1. 'राम की शक्तिपूजा' के ऐतिहासिक संदर्भ पर प्रकाश डालते हुए इस कविता के संवेदनात्मक उद्देश्य को स्पष्ट कीजिए।
2. 'काव्यरूप' की दृष्टि से विचार कर बताएँ कि 'राम की शक्तिपूजा' क्या है? 'खण्डकाव्य', 'महाकाव्य' या लंबी कविता। अपने उत्तर को तर्क से पुष्ट कीजिए।
3. 'राम की शक्तिपूजा' के माध्यम से कवि क्या संप्रेषित करना चाहता है ?

इस खंड के लिए उपयोगी पुस्तकें

1.	काव्य कला और अन्य निबंध	: जयशंकर प्रसाद
2.	प्रसाद रचना संचयन (सं0) विष्णु प्रभाकर	: रमेश चन्द्र शाह
3.	छायावाद	: नामवर सिंह
4.	आधुनिक हिंदी कविता में बिंब विधान	: केदारनाथ सिंह
5.	हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास	: रामस्वरूप चतुर्वेदी
6.	छायावाद की प्रासंगिता	: रमेश चन्द्र शाह
7.	कामायनी : एक पुनर्विचार	: गजानन माधव मुक्तिबोध
8.	हिंदी साहित्य का इतिहास	: रामचन्द्र शुक्ल
9.	आधुनिक हिंदी समीक्षा	: (सं0) निर्मला जैन, प्रेमशंकर
10.	प्रसाद-निराला-अज्ञेय	: रामस्वरूप चतुर्वेदी
11.	मिथक और स्वप्नः कामायनी की मनस्सौंदर्य सामाजिक भूमिका	: रमेश कुंतल मेघ
12.	छायावाद : उत्थान-पतन-पुनर्मूल्यांकन	: रमेश कुंतल मेघ
13.	प्रसाद-प्रतिभा	: सं0 इन्द्रनाथ मदान
14.	जयशंकर प्रसाद	: नंद दुलारे वाजपेयी
15.	कामायनी के अध्ययन की समस्याएँ	: नगेन्द्र
16.	कविता के नए प्रतिमान	: नामवर सिंह
17.	आधुनिक साहित्य	: नंद दुलारे वाजपेयी
18.	राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन और प्रसाद	: ('समकालीन सृजन', सं0 शंभुनाथ)
19.	कवि कर्म और काव्य-भाषा	: परमानंद श्रीवास्तव
20.	काव्यकला और अन्य निबंध	: जयशंकर प्रसाद
21.	छायावाद	: नामवर सिंह
22.	छायावाद की प्रासंगिकता	: रमेशचंद्र शाह
23.	कवि कर्म और काव्यभाषा	: परमानंद श्रीवास्तव
24.	कामायनी के अध्यन की समस्याएँ	: नगेन्द्र
25.	आधुनिक हिन्दी कविता में बिम्बविधान	: केदारनाथ सिंह
26.	प्रसाद-निराला- अज्ञेय	: रामस्वरूप चतुर्वेदी
27.	भाषा और संवेदना	: रामस्वरूप चतुर्वेदी
28.	हिन्दी साहित्य का इतिहास	: रामचंद्र शुक्ल
29.	वाद-विवाद-संवाद	: नामवर सिंह
30.	प्रसाद रचना संचयन	: सं.-विष्णु प्रभाकर, रमेशचंद्र शाह
31.	इतिहास और आलोचना	: नामवर सिंह